न माला—२

और विवाह

डा० डब्ल्यू बेरान वोल्फ

अनुवादक

श्री गङ्गा प्रसाद सिंह

प्रेम और विवाह

रचनात्मक आत्म-निर्माण एक कला है, तथा प्रेम और विवाह इस कला की सर्वोत्तम अभिव्यक्ति हैं। प्रेम केवल मानव की अन्तरात्मा का विकास ही नहीं करता, वरन् उसमें निहित उस अमूल्य भावना की सिद्धि का कारण होता है, जो पुरुष नारी के प्रति तथा नारी पुरुष के प्रति अनुभव करती है। प्रेम जहां एक तरफ नये उत्तरदायित्वों और कर्त्तव्यों की सृष्टि करता है, वहां दूसरी तरफ व्यक्तिगत विकास के अद्वितीय अवसर भी प्रदान करता है। जिस प्रकार अन्तरात्मा का पूर्ण विकास सुखी प्रेम-जीवन का प्रधान तत्व है, उसी प्रकार लोक-हितकारी आचरण के बिना आदर्श प्रेम की प्राप्ति नहीं हो सकती। और यह आचरण हमारे दिन-प्रतिदिन के उन सम्बन्धों में व्यक्त होता है, जिनके निर्वाह के लिए अधिक से अधिक आत्म-विश्वास, ठोस दृष्टिकोण, सामाजिक उत्तरदायित्व तथा इन सबसे बढ़कर, सुविकसित विनोद-बुद्धि (सेन्स ऑफ ह्यूमर) की अनिवार्य आवश्यकता होती है। ऐसी अवस्था में यह कोई आश्चर्य की बात नहीं कि मनुष्य की अधिकांश असफलताएं जीवन के अन्य क्षेत्रों की अपेक्षा प्रेम के ही क्षेत्र में देखने को मिलती हैं तथा अनेक विकृत-मानस

आनन्द-विहीन प्रेम-सम्बंधों तथा प्रेम-हीन वैवाहिक-सम्बंधों का सफल प्रेम एवं विवाहों से क्या अनुपात है, फिर भी सुन्दर विवाह और सुखी प्रेम का अस्तित्व है, इस पर सन्देह नहीं किया जा सकता।

जहां तक दुखी विवाह-सम्बंधों का प्रश्न है कम से कम इतना तो निश्चय-पूर्वक कहा जा सकता है कि इनमें से अधिकांश के पीछे ऐसे कारण होते हैं जिनसे बचाव किया जा सकता है। हमारे दृष्टिकोण से वैवाहिक असन्तोष के इन निवारणीय कारणों का विश्लेषण परम्परागत नैतिक मापदण्डों से न करके इस प्रकार करना चाहिए मानो दुखी विवाह-सम्बंधों से बिखरे हुए ये जीवन मानसिक चिकित्सालय की जीवन-प्रयोगशाला के असफल प्रयोग हों। इन असफलताओं का अध्ययन करके हम आचरण-सम्बंधी कुछ ऐसे नियम निकाल सकते हैं, जिनसे उन व्यक्तियों का लाभ हो सके जो या तो अनुभव करते हैं कि उनकी प्रेम-ज्योति धुंधली होती जा रही है अथवा जो मानवीय सहयोग के इस अत्यन्त रोमांचकारी क्षेत्र (प्रेम और विवाह) में पदार्पण करने जा रहे हैं।

समाज के प्रत्येक वर्ग में पाये जाने वाले आनन्द-विहीन और असन्तोष-पूर्ण विवाहों की व्याख्या करने के लिए सबसे पहले हमें यह जान लेना चाहिए कि सुखी वैवाहिक-जीवन के तत्त्व क्या हैं। परन्तु यह प्रश्न बड़ा कठिन है। वैवाहिक आनन्द का कोई निश्चित माप-दण्ड नहीं है और न कोई ऐसा

की परिपक्व भावना, वस्तुस्थिति के अनुकूल आचरण करने की योग्यता, मानसिक विकृति तथा काल्पनिक आदर्शवाद से मुक्ति, विस्तृत एवं उदार मानवीय प्रवृत्ति तथा सहयोग के आधार पर आगे बढ़ने, कष्ट उठाने और जीवन के सुख-दुःख में भाग लेने की अन्तर-प्रेरणा—ये ही दिन-प्रतिदिन की प्रेम-समस्याओं को सफलता-पूर्वक सुलझाने के मूल-मंत्र हैं। अपने वैवाहिक साथी की परिस्थिती से पूर्ण आत्मीयता तथा उसे निरन्तर उत्साहित करते रहने की तत्परता लोगों की साधारण बाधाओं को दूर कर देती है। साथ ही यदि दोनों की समाज के लिए उपयोगी काम-धन्धों में भी समानता हो तो सोने में सुगन्ध आ जाती है। अन्त में, आर्थिक स्वतन्त्रता, धार्मिक तथा सामाजिक साम्यता और विकृत-मानस सम्बन्धियों से छुटकारा, यदि उपलब्ध हों तो यह वैवाहिक बन्धन को सुदृढ़ बनाने में सहायक होते हैं।

वैवाहिक नैराश्य के कुछ कारण

बहुत कम ऐसे व्यक्ति हैं जो पिछले परिच्छेद में बताए हुए सभी आदर्श साधनों के साथ विवाह सम्बंध में प्रवेश करते हैं। जब भी दो मनुष्य परस्पर प्रेम करते हैं, वे केवल एक दूसरे को ही नहीं, वरन एक-दूसरे से सम्बंध रखने वाली सम्पूर्ण परम्परा और पृष्ठ-भूमि की एक-एक चीज को प्रेम करते हैं। यदि इन वांछित मौलिक आवश्यकताओं में से कुछ की पूर्ति न भी हो सकी

निरपेक्ष (ऐब्सोल्यूट्) नियम है जिसके अनुसार अतीव कला-पूर्ण ढंग से मानवीय सम्बन्धों का निर्वाह हो। अनेक स्त्री और पुरुष ऐसे जीवन में सुखी हैं जो स्त्री-पुरुषों के दुःख और विषाद का कारण बन जाता है। दम्पति सन्तान के अभाव में दुःखी हैं, तो कई बिना सन्तान ही पूर्ण सुखी हैं। कई अपनी गरीबी में सुखी हैं तो कई आर्थिक अवस्था ही उनके दुःख की जड़ है। शारीरिक प्रवृत्ति जहां एक दम्पति के दुःख का कारण है, वही यह दूसरे सुन्दर सहयोग का आधार है। अनेक ऐसी बातें हैं जिन्हें प्रेम-सम्बंध के आरम्भ में कोई महत्त्व नहीं दिया जाता, पर समय बीतने पर वे ही सुख या दुःख का कारण बन जाती हैं। अनेक दम्पति जो आरम्भ में सब प्रकार से सुखी होते हैं, बाद को दुःखी रहने लगते हैं, क्योंकि मनुष्यों का मानसिक और आध्यात्मिक विकास विभिन्न गतियों से होता है।

सुखी वैवाहिक जीवन की कुछ मौलिक आवश्यकताएं इस प्रकार हैं—प्रेम-बन्धन में बंधने वाले दोनों साथियों में आत्म-सम्मान की ठोस बुद्धि, तथा सुविकसित सामाजिक भावना होनी चाहिए। दोनों ही को एक दूसरे को नीचा दिखाकर अधिक प्रतिष्ठा प्राप्त करने की विकृत प्रतिद्वन्द्विता से मुक्त होना चाहिए। मानसिक परिपक्वता, शारीरिक स्वास्थ्य, दृष्टिकोण में मनोवैज्ञानिक स्वतन्त्रता, प्रेम-कला का ज्ञान तथा गर्भ-निरोध का अभ्यास भी सामान्य कामुक-जीवन की पृष्ठ-भूमि है। सामाजिक उत्तरदायित्व

की परिपक्व भावना, वस्तुस्थिति के अनुकूल आचरण करने की योग्यता, मानसिक विकृति तथा काल्पनिक आदर्शवाद से मुक्ति, विस्तृत एवं उदार मानवीय प्रवृत्ति तथा सहयोग के आधार पर आगे बढ़ने, कष्ट उठाने और जीवन के सुख-दुःख में भाग लेने की अन्तर-प्रेरणा—ये ही दिन-प्रतिदिन की प्रेम-समस्याओं को सफलता-पूर्वक सुलझाने के मूल-मंत्र हैं। अपने वैवाहिक साथी की परिस्थिती से पूर्ण आत्मीयता तथा उसे निरन्तर उत्साहित करते रहने की तत्परता लोगों की साधारण बाधाओं को दूर कर देती है। साथ ही यदि दोनों की समाज के लिए उपयोगी काम-धन्धों में भी समानता हो तो सोने में सुगन्ध आ जाती है। अन्त में, आर्थिक स्वतन्त्रता, धार्मिक तथा सामाजिक मान्यता और विकृत-मानस सम्बन्धियों से छुटकारा, यदि उपलब्ध हों तो यह वैवाहिक बन्धन को सुदृढ़ बनाने में सहायक होते हैं।

वैवाहिक नैराश्य के कुछ कारण

बहुत कम ऐसे व्यक्ति हैं जो पिछले परिच्छेद में बताए हुए सभी आदर्श साधनों के साथ विवाह सम्बंध में प्रवेश करते हैं। जब भी दो मनुष्य परस्पर प्रेम करते हैं, वे केवल एक दूसरे को ही नहीं, परन् एक-दूसरे से सम्बंध रखने वाली सम्पूर्ण परम्परा और पृष्ठ-भूमि की एक-एक चीज को प्रेम करते हैं। यदि इन वांछित मौलिक आवश्यकताओं में से कुछ की पूर्ति न भी हो सके

तो यह कोई ऐसा अभाव नहीं है कि विवाह सम्बंध सुखी न हो सके, क्योंकि विवाह का ढांचा एकदम जकड़ा हुआ नहीं होता, उसे हिलाया-डुलाया भी जा सकता है। जिस प्रकार प्रकृति शरीर के एक अङ्ग की दुर्बलता दूसरे अङ्ग को उतना ही प्रौढ़ बनाकर दूर कर देती है, ठीक उसी प्रकार दो प्रेमियों के वैवाहिक संयोग में एक दूसरे के अभावों की पूर्ति की अनेक सम्भावनाएं निहित रहती हैं। किसी विशेष अभाव के होते हुए भी कई ऐसे दम्पति जिनके दुखी रहने की सम्भावना की जाती थी, वर्षों तक आनन्द का जीवन विताते रहे हैं। और इसका कारण अपने बच्चों दोनों प्रेमियों का समान स्नेह, अथवा किसी सामाजिक समस्या महत्त्वाकांक्षा या उद्यम में दोनों का सहयोग रहा है। हमने ऐसे भी दम्पति देखे हैं जिनकी आरम्भिक परिस्थिति को देखने उनके प्रेम की असफलता निश्चित सी प्रतीत होती थी, परन्तु उन्हें संगीत, अश्व-प्रेम या अन्य किसी कार्य-विशेष के नाते ही सारा जीवन साथ-साथ आनन्द-पूर्वक बिता लिया।

स्त्री और पुरुषों की एक आश्चर्यजनक बड़ी संख्या वैवाहिक साथी का चुनाव ठीक उसी प्रकार करती है जैसे सड़क बनाने वाला किसी गड्ढेको बन्द करनेके लिए कङ्कड़-प चुनता है। पुरुष आशा करता है कि उसकी पत्नी उसके अव और अभावों की हर प्रकार से क्षतिपूरक (कॉम्पेन्सेटिव) स्त्री भी अपने पति का चुनाव कुछ ऐसी ही झूठी आ करती है। यही कारण है कि जीवन में हमें

बेजोड़ गठबन्धन—जैसे किसी निर्दयी पुरुष और अबला स्त्री में; किसी जबरदस्त, मर्दानी औरत तथा स्त्रैण पुरुष में; किसी स्वतन्त्र एवं साहसी पुरुष तथा निराश्रित, मूर्ख स्त्री में; या किसी स्वस्थ और मोटी स्त्री और सूखे हुए किताबी कीड़े पुरुष में—देखने को मिलते हैं। कितने ही स्त्री और पुरुष व्यक्ति-विशेष को इस आशा से चुनते हैं कि उसके साथ विवाह हो जाने पर उनके व्यक्तित्व के अनेक ऐसे अभाव, जिनको अपनी कायरतावश वे स्वयं दूर नहीं कर सकते, अपने-आप पूरे हो जायंगे। ऐसा लगता है मानो इस प्रकार के बने-बनाए गुणों वाले व्यक्ति से विवाह कर लेना कोई ऐसा जादू है जिसके द्वारा अब तक के असफल उद्देश्य तुरन्त प्राप्त हो जायंगे।

प्रेम-सम्बंध पारस्परिक सेवा और उत्साह के सुअवसर के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। विवाह-बन्धन सारे अभावों को दूर करने की रामबाण औषधि नहीं, वरन् एक ऐसा कर्त्तव्य है जो वर्षों में पूरा किया जा सकता है, और वह भी किसी जादू की लकड़ी के स्पर्श से नहीं,बल्कि सतत परिश्रम और सहानुभूति-पूर्ण सहयोग से। संभवतः स्त्री और पुरुष अधिक सुखी होते यदि विवाह-सम्बंध करना कठिन तथा विच्छेद कर लेना आसान होता। हम तो चाहते हैं कि स्त्री और पुरुष के सामाजिक साहस तथा सहयोग की कोई ऐसी परीक्षा हुआ करे जिससे पता चले कि वैवाहिक जीवन को सुखी बनाने के लिए दोनों ही अपना अहं (ईगो) दूसरे में मिला देने की इच्छा और योग्यता

रखते हैं। विवाह सम्बंध सुखी वहीं हो सकते हैं, जहां दोनों साथी अपने प्रेम-जीवन को एक ऐसे सामाजिक समझौतेके पालन का सुअवसर समझते हैं, जो कठिनाईयों के बावजूद भी दोनों पारस्परिक हित में भलीभांति कार्यान्वित किया जा सकता है।

बहुधा ऐसा होता है कि स्त्री और पुरुष, जो किसी चीज के खरीदने या कहीं बाहर जाने का साधारण निर्णय करने में बार-बार सोचने-समझने और मीन-मेख निकालने वाले होते हैं, विवाह जैसे महत्त्व-पूर्ण सम्बंध को यूं ही अनायास कर लेते हैं। इन पृष्ठों को पढ़ने वाला शायद ही कोई पाठक हो जो ऐसी महिलाओं को न जानता हो जो केवल एक मौसम के पहनावे का कपड़ा चुनने में दिन बिता देंगी, परन्तु विवाह जैसा जीवन-सौदा केवल इस जरा सी बात पर कर लेंगी कि 'अमुक व्यक्ति गाता बड़ा अच्छा है या शतरंज का चतुर खिलाड़ी है'। दूसरी तरफ ऐसे पुरुष कम नहीं हैं जो केवल आधी पाई के लाभ के लिए अपने व्यापारी-प्रतिद्वन्द्वी का हफ्तों पीछा करेंगे, तथा रातों-रात जागकर योजना बनायंगे, परन्तु विवाह केवल इसलिए कर लेंगे कि लड़की का रंग साफ है या उसके टखनों का घुमाव सुन्दर है। कभी-कभी लड़कियां ईर्ष्या के मारे भी शादी कर लेती हैं, क्योंकि अपनी पहली पसन्द के व्यक्ति से शादी करा पाने में वे असफल रही हैं। इसी प्रकार कई ऐसे व्यक्तियों ने, जो वैसे तो सयाने हैं तथा अपना हित भलीभांति समझते हैं, अपने समीप की किसी लड़की से केवल इसलिए शादी करली कि खोजने की

तक्लीफ़ से बच गए और आसानी से नजदीक में ही बीवी मिल गई।

जर्मनी के काले जङ्गलों में स्थित थुरङ्गिया के निवासियों में विवाह करने के लिए इच्छुक व्यक्तियों के पारस्परिक सहयोग की परीक्षा का एक अत्युत्तम तरीका प्रचलित है। भावी दूल्हे और दुलहिन के मित्र उन्हें जङ्गल के एक ऐसे भाग में ले जाते हैं जहां कोई भारी पेड़ गिरा हो, और दोनों तरफ मुठिया लगी हुई एक आरी देकर दोनों को लकड़ी चीरने के काम पर लगा देते हैं। चूंकि इस संयुक्त कार्य के सम्पादन के लिए दोनों व्यक्तियों के शरीर और शक्ति-प्रयोग में पूर्ण सामंजस्य होना परमावश्यक है, वे जिस तेजी, आसानी और कुशलता से लकड़ी चीरते हैं, उसे देखकर ही उनके *भावी सुख और सहयोग की रूप-रेखा* का अनुमान लगा लिया जाता है। परन्तु शहर में रहने वालों के लिए ऐसा आसान तरीका कोई नहीं है। हां, यदि किसी बड़े संदूक में अनेक प्रकार की चीजों को साथ-साथ रखना हो या किसी बुरी तरह उलझी हुई रस्सी की गांठें मिलकर सुलझानी हों, तो अलबत्ता थोड़ा अनुमान लगाया जा सकता है। पारस्परिक सहयोग और सामाजिक उत्तरदायित्व के क्षेत्र में दो व्यक्तियों का पिछला इतिहास कैसा रहा है, इसका सूक्ष्म अध्ययन करके ही हम जान सकते हैं कि उनका वैवाहिक जीवन सुखी हो सकेगा अथवा नहीं।

हमने अबतक जितने सुखी प्रेम-सम्बंधों तथा विच्छेदित

विवाहों का अध्ययन किया है, उनमें से अधिकांश के पीछे तीन प्रकार के प्रमुख कारण मिले हैं और अभाग्यवश ये सभी कारण ऐसे हैं जिनका निवारण किया जा सकता था—(१) शरीर-विज्ञान और प्रेम-कला का ज्ञान न होना, (२) दोनों साथियों में एक दूसरे को नीचा दिखाकर प्रतिष्ठा प्राप्त करने की प्रतिद्वन्द्विता, तथा (३) साथी का चुनाव करने और उसके साथ सम्बंध-निर्वाह करने में बच्चों जैसे काल्पनिक दृष्टिकोण से काम लेना। प्रत्येक असफल विवाहके पीछे इनमें से ही एक-न-एक कारण होता है; और जहां एक से अधिक एक साथ उपस्थित हो जाते हैं वहां सम्बंध-विच्छेद अवश्यम्भावी हो जाता है। वैवाहिक अव्यवस्था के इन प्रधान कारणों की छान-बीन बहुत उपयोगी सिद्ध होगी।

अज्ञान—वैवाहिक असफलता के कारण के रूप में

सबसे पहले हम लोगों में शरीर-विज्ञान और प्रेम-कला की अनभिज्ञता पर विचार करें, क्योंकि तीनों कारणों में यह सबसे अक्षम्य है। लैंगिक-अज्ञान (सेक्स्वल इग्नोरेन्स) जो हमारी पुराणपंथी परम्परा की देन है तथा जिसके बन्धनों में हम आज भी जकड़े हुए हैं, वैवाहिक असफलता का एक प्रधान कारण है। पैतृक युग से चली आती हुई यह रूढ़ी, जिसके अनुसार इन्द्रिय-[illegible]ार की चर्चा भी वर्जित है, बचपन से ही हमारे जीवन पर विपाक्त प्रभाव डालने लगती है। हमारी शिक्षा की सारी

पद्धति ही इस मिथ्या भावना से ओत-प्रोत है कि 'विषय' एक संदिग्ध पापाचार और पाशविकता है, और इस सम्बंध में एक रहस्य-पूर्ण चुप्पी साधे रहना ही शिष्टता है।

बच्चों को जीवन के इन मौलिक सत्यों से अवगत कराने के सुन्दर से सुन्दर अवसरों पर भी हम एक दिखावटी गम्भीरता की मुद्रा बनाए रहते हैं। ऐसे माता-पिता भी, जो जीवन के अन्य सभी क्षेत्रों में ठोस दृष्टिकोण से काम लेते हैं, अपने बच्चों के सामने प्रेम और सृजन के सरल व्यापारों की व्याख्या करने में हिचक जाते हैं। शिक्षक, जो इस कर्त्तव्य का पालन आसानी से कर सकते हैं, माता-पिता के विचारों को ठेस पहुंचाने के भय से, चुप रह जाते हैं। डाक्टर भी जो सम्भवतः माता-पिता के बाद इस कार्य के लिए सबसे उपयुक्त व्यक्ति हैं, या तो आवश्यकता से अधिक व्यस्त हैं या इस विषय के साथ न्याय कर पाने की योग्यता ही नहीं रखते।

जीवन के आरम्भ से ही हमें चलने, बोलने, अभिवादन करने तथा क़ायदे से कपड़े पहिनने की शिक्षा दी जाती है। ज्यों ही हमारी स्कूली पढ़ाई की पहली सीढ़ी समाप्त होजाती है हमें खेलने, साईकल चलाने, लोगों से मिलने-जुलने तथा अन्य सामाजिक शिष्टाचारों की शिक्षा दी जाती है। जीविकोपार्जन करके हम अपना निर्वाह कर सकें, इसके लिए तरह-तरह के उद्योगों की शिक्षा भी हमें दी जाती है। परन्तु शायद ही कोई ऐसा स्त्री या पुरुष हो जिसे किसी कुशल शिक्षक द्वारा इस बात

की शिक्षा दी गई हो कि एक सफल प्रेमी, आदर्श पति अथवा प्रभावशालिनी पत्नी कैसे बना जा सकता है।

हमारे आधुनिक जीवन का अभिशाप यह है कि अश्लील आख्यानों से भरे हुए उपन्यासों, कामोद्दीपक चित्रों और लेखों से पूर्ण समाचार-पत्रों, तथा लम्पटता-पूर्ण दृश्यों से भरे हुए नाटकों और चलचित्रों की प्रबल धारा में बहाकर हम अपने नौजवानों का दिमाग़ अनेक ग़लत धारणाओं से भर ही नहीं देते, वरन् उनकी स्वाभाविक एवं सामान्य काम-वृत्ति को बुरी तरह उत्तेजित और विकृत भी बना देते हैं। जहां एक तरफ हम अपने ही हाथों इतने विषाक्त वातावरण की सृष्टि करते हैं वहां दूसरी तरफ लैंगिक-ज्ञान (सैक्स) के ऊपर एक गुप्त और अपवित्रता का भूठा पर्दा डालकर अपने बच्चों को जीवन की इस अमूल्य जानकारी से वंचित रखते हैं।

जिस समय लड़की को यह विश्वास कराया जाता है कि उसके जीवन का एकमात्र लक्ष्य विवाह को सफल बनाना तथा एक सुन्दर घर बसाना है, काम-वृत्ति सम्बन्धी अत्यन्त उपयोगी जानकारी उससे छिपा रखी जाती है तथा इस विषय की किसी प्रयोगात्मक तैयारी को उसके लिए सर्वथा अवांछनीय घोषित कर दिया जाता है। सामान्य पुरुष की विचार-धारा पुराने दकियानूसी ख़यालों में जकड़ी हुई है। समाज की अच्छी कही जाने वाली लड़कियों में से अधिकांश विवाह की कल्पित 'पवित्रता' को अधिक महत्त्व देती हैं बनिस्बत अपनी प्रेम-समस्या का एक

साहस-पूर्ण हल ढूंढने के। अधिकांश पुरुष आज भी विश्वास करते हैं कि स्त्री 'अबला' है और यदि वे अकेले सारे परिवार का भरण-पोषण करने का श्रेय नहीं प्राप्त करते तो उनके पुरुषत्त्व में धट्टा लग जायगा।

शारीरिक और लैंगिक स्वास्थ्य-विज्ञान के विषय में आज भी बहुत कम लोगों को ज्ञान है। अनेक स्त्री और पुरुष जो कई अनावश्यक व्यसनों की शिक्षा लेने में बड़ा उत्साह दिखाते हैं, प्रेम जैसे महत्त्वपूर्ण विषय की शिक्षा प्रकृति के सिर छोड़ देते हैं,हालांकि इसकी अनभिज्ञता से उत्पन्न दुर्भाग्य के उदाहरणों से सारा साहित्य भरा पड़ा है। चूंकि समाज में अपने वर्ग की लड़कियों के साथ लैंगिक सम्बंध स्थापित करना पाप समझा जाता है, पैतृक सभ्यता की यह परम्परा हमारे नौजवानों को वेश्याओं के साथ'तृप्ति'खोजने को मजबूर कर देती है। परिणाम यह होताहै कि जब ऐसा नौजवान किसी'अच्छी भली'लड़की से विवाह करता है तो उसे वेश्यालय के गन्दे और सन्दिग्ध तरीकों का पता होता है। ऐसे सम्बंधों का अन्तिम परिणाम पति की नपुंसकता या पत्नी की घोर आत्म-ग्लानि के अतिरिक्त और क्या हो सकता है ?

दूसरी तरफ जो स्त्री-पुरुष सामाजिक रूढ़ियों के कट्टर भक्त होते हैं, तीस-पैंतीस वर्ष की अवस्था प्रतीक्षा में ही व्यतीत कर देते हैं। और जब बिना किसी पूर्व अनुभव के शादी करते हैं तो बहुधा अपने ही संकोच, भद्देपन और विषय-व्यापार के अज्ञान के कारण अपना वैवाहिक जीवन चौपट कर लेते हैं।

विवाह—कर्त्तव्य के रूप में

हमारी सभ्यता की परिस्थिति ठीक वैसी ही है जैसे किसी व्यक्ति को उसके जीवन के आरम्भ से यह तो बताया और दोहराया जाय कि यदि उसे समाज में महत्व प्राप्त करना है तो भविष्य में अमुक नदी पर एक बड़ा पुल बनाने के लिए उसे तैयार रहना चाहिए, परन्तु पुल बनवाने के ठीक समय तक उसको पुलों से सम्बंध रखने वाली जानकारी, उन्हें बनाने के साधन, कौशल तथा शिल्पविद्या से जान-बूझकर अनभिज्ञ रखा जाय। इस पृष्ठ-भूमि के साथ ही हम उन अनेकों युवकों की दुरवस्था को समझ सकते हैं, जो या तो अपने माता-पिता द्वारा जबरदस्ती विवाह-बन्धन में डाल दिए जाते हैं अथवा विवाह के सच्चे अर्थ से सर्वथा अनभिज्ञ रहते हुए भी स्वयं इस बन्धन में फंस जाते हैं। एक संस्था के रूप में विवाह का दुरुपयोग मनुष्य-मात्र की तद्विषयक अनभिज्ञता का एक दूसरा स्वरूप है। अनेक ऐसे युवक मिलेंगे, जो केवल इसलिए विवाह कर लेते हैं कि इससे उन्हें इन्द्रिय-वासना की तृप्ति का खुला द्वार मिल जाता है। इसी प्रकार अनेक स्त्रियां इस मिथ्या आशा में विवाह कर लेती हैं कि शायद इसमें ही उनकी सारी समस्याओं का समाधान मिल जायगा।

विवाह एक कर्त्तव्य तथा सौदा दोनों है, इसके निर्वाह के लिए लम्बी और निरन्तर तैयारी की आवश्यकता होती है।

एक बड़ी समस्या का हल छोटी समस्या का हल नहीं बन सकता। आप मानसिक विकार विवाह से दूर नहीं कर सकते,क्योंकि विकृत भूमि में प्रेम का पौदा उगता ही नहीं। यदि सौदा करने वाले विकृत-मानस हैं, तो विवाह उनकी मुश्किलों को दूर न करके और भी बढ़ा देगा। जो स्त्रियां केवल इसलिए विवाह करती हैं कि कोई रोटी कमाने वाला मिल जाय,तो उनका सौदा महज़ उतनी ही क़ीमत का ठहरता है, बल्कि अधिकांश को तो रोटी भी कड़वी मिलती है। इसी प्रकार जो नौजवान एक नौकरानी और नर्स का सस्ता और संयुक्त-प्रतिरूप पा जाने के ख़याल से विवाह करते हैं, उनको सचमुच उतना ही नसीब होता है—बहुत खुशकिस्मती हुई तो एक नमक-हलाल दासी, नहीं तो एक झगड़ालू रसोई बनाने वाली, जो नन्हीं-नन्हीं चीजों पर भी सिर खाया करेगी। स्त्रियों की एक और श्रेणी है जो किसी भी पुरुष को जो सबसे पहले उनके सामने आये पसन्द कर लेती हैं; और वह केवल इसलिए कि वे अपने माता-पिता की कठोर निगरानी से मुक्ति पाने के लिए बेताब रहती हैं। लेकिन कुछ ही दिनों में यह देखकर उनका स्वप्न भंग हो जाता है कि आखिर उन्होंने फिर एक आदमी से ही गठबन्धन किया है न कि ऐसे पंखों से, जिनके सहारे उड़ कर जीवन की सारी कठिनाइयों से दूर पहुंच सकें।

विवाह का सच्चा अर्थ न समझ पाने के ऐसे ही अनेक उदाहरण दिए जा सकते हैं। करीब-करीब प्रत्येक वैवाहिक-सम्बंध की [illegible] एक ही मौलिक भ्रम पाया जाता

है कि विवाह इस या उस असह्य परिस्थिति का समाधान है अथवा उससे भाग निकलने का रास्ता है। ऐसे ही विवाह आगे चलकर वैवाहिक अरुचि और असंगतता, पौरुष-हीनता तथा नपुंसकता आदि रूपान्तर विकारों (कन्वर्शन न्यूरोसिस) का कारण बन जाते हैं। सच तो यह है कि जब तक हम प्रेम की शिक्षा जीवन से निराश अधेड़ कुमारियों या ऊपर से पुरुषत्व का आडम्बर करने वाले नपुंसक 'ब्रह्मचारियों' द्वारा लिखे गए सनसनी-पूर्ण उपन्यासों से लेते रहेंगे; तथा जबतक अपने बच्चों को यह विश्वास करना सिखाते रहेंगे कि उन्हें उस मनोवैज्ञानिक क्षण की प्रतीक्षा करनी चाहिए जब एकाएक उनके जीवन में वह दिव्य राजकुमार या राजकुमारी प्रवेश करेगी, जिसके आगमन-मात्र से उनका जीवन स्वर्ग की भांति सुखी हो जायगा; हमारे समाज में दुखी विवाहों की संख्या बढ़ती ही जायगी।

वैवाहिक नैराश्य का एक और प्रधान कारण गर्भ-निरोध के तरीकों और साधनों को न जानना है। सभ्य मानवों का प्रेम पशुओं जैसा सरल व्यापार नहीं है। इसके केवल जीवात्मक (बायोलॉजिकल) ही नहीं, वरन् सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, नागरिक, बौद्धिक तथा कभी-कभी धार्मिक परिणाम भी निकलते हैं। यदि विवाह केवल एक जीवात्मक समस्या ही होती तथा पशुओं की भांति मनुष्य भी केवल संभव ... रह ही यौन-द्वन्द्व रहता—जैसा कि आज भी ... प्रचलित वैज्ञानिक सत्यों के विरुद्ध कई धर्मों

के अनुयायी विश्वास करते हैं—तो इस समस्या का समाधान उतना ही सरल होता जितना चूहों और सूअरों के लिए है।

काम-वृत्ति का समाजीकरण

मनुष्य तथा अन्य प्राणियों में कुछ मौलिक अन्तर हैं। सबसे बड़ा अन्तर यह है कि दूध पिलाने वाले प्राणियों में मानवी स्त्री ही ऐसी है जो किसी भी समय यौन-सम्बंध में प्रवृत्त होने की योग्यता रखती है। मनुष्य से सम्बंध रखने वाला यह विशेष जीवात्मक (बॉयोलॉजिकल) सत्य ही मनुष्य की अनेक लैंगिक समस्याओं को जन्म देता है तथा नर-नारी के प्रेम और विवाह सम्बन्ध को विशुद्ध जीवात्मक क्षेत्र से हटा कर सामाजिक क्षेत्र का प्रश्न बना देता है।

सामाजिक जीवन मनुष्य की एक मौलिक आवश्यकता है। इसने अन्य कई सामान्य जीवात्मक प्रेरणाओं की ही भांति मनुष्य की काम-वृत्ति को भी एक विशुद्ध-सामाजिक विषय बना दिया है। जीवात्मक शक्तियों को सामाजिक दिशा में मोड़ने की इस क्रिया को प्रयोजनात्मक-पुनर्गठन (हॉर्मिक री-कांस्टेलेशन), प्रेरणात्मक-पुनर्गठन (कोनेटिव री-कांस्टेलेशन) या उद्भावक-विकास (इमर्जेण्ट इवोल्यूशन) जैसे विभिन्न नामों से पुकारा जाता है। उदाहरण के लिए आप मनुष्य की मौलिक आवश्यकता, भोजन, को ले लीजिए। घनिष्ट सामाजिक सम्बंधों की आवश्यकता ने मानव की इस मौलिक वृत्ति का भी किस

प्रकार प्रयोजनात्मक-पुनर्गठन कर डाला है, इसे हम मेज, कुर्सी, चम्मच, गिलास, थालियों की सजावट, और खान-पान के अनेक प्रकार के शिष्टाचारों के रूप में देख सकते हैं। कहने का अभिप्राय यह है कि सभ्य समाज में भोजन का अवसर सामाजिक आदान प्रदान का उतना ही साधन बन गया है जितना शरीर-पोषण का।

इसी प्रकार कपड़े, जिन्हें मनुष्य ने केवल अपने नङ्गेपन को छिपाने तथा शरीर की रक्षा करने के लिए पहनना आरम्भ किया था, आज सामाजिक आचरण और शिष्टाचार के अङ्ग बन गए हैं। किसी समय और अवसर विशेष पर स्त्री किस रङ्ग और डिजाइन की साड़ी पहने तथा पुरुष का कुरता और धोती किस प्रकार के हों, शरीर ढकने-मात्र की मौलिक आवश्यकता से इनका कोई सम्बंध नहीं है। इसका वास्तविक कारण वस्त्र-व्यवहार कला का वह उद्भावक विकास है, जो सामाजिक आवश्यकता के प्रभाव में अपने-आप होता गया है। इसी प्रकार कला और साहित्य मानव में संवेदन-शीलता की मौलिक प्रवृत्ति के प्रयोजनात्मक-पुनर्गठन हैं। बड़े-बड़े कल-कारखाने, गगनचुम्बी अट्टालिकायें, समाचार-पत्र, बीमा कम्पनियां, खेल-कूद तथा अगणित दैनिक कारोबार ऐसे जीवात्मक व्यवहारों के उद्भावक विकास हैं, जिन्हें हमारे आदिम-पुरुष सहज भाव से ही पूर्ण कर लिया करते थे।

आदिम युग के मनुष्य के सामने आधुनिक सभ्यता की एक

भी जटिलता मौजूद न थी। वह यौन-सम्बंध तभी करता था जब उसे सृजन की अबोध 'जीवात्मक' (बायोलॉजिकल) प्रेरणा होती थी। धीरे-धीरे जब मनुष्य जङ्गलों में रहने लगा तथा उसे शिकार करने, झोंपड़ी बनाने, युद्ध या नृत्य करने आदि सामूहिक कार्यों के अवसर मिलने लगे, तब उसने जीवन का मूल्य और अर्थ समझना आरम्भ किया। हालांकि सभ्यता के इस आरम्भिक काल में मनुष्य की मौलिक प्रवृत्ति व्यक्तिवादी ही थी, फिर भी ऐसे अवसरों की संख्या काफी बढ़ गई थी जबकि वे सामाजिक जीवन का महत्त्व समझ सकते थे। परन्तु आज हमारी सभ्यता जटिलताओं से भर गई है। जहां एक तरफ उसकी प्रवृत्ति प्रत्येक क्षेत्र में विशेषज्ञों से काम लेने की हो गई है, वहीं दूसरी तरफ वह सारे मानव-प्रयत्नों का विकेन्द्रीकरण तथा समाजीकरण भी कर डालना चाहती है। इन विषम प्रवृत्तियों ने आधुनिक मनुष्य के जीवन-प्रवाह में लैंगिक सम्बंधों का अर्थ एकदम बदल दिया है।

ज्यों-ज्यों मशीनें और शक्ति के साधन ... व्यक्ति के श्रम का समाजीकरण होता गया ... प में विशाल ... की ... का ... का ... के

रति-सम्बंध को, जिसे आज के साधारण मनुष्य के जीवन का एकमात्र महत्त्व-पूर्ण सम्बंध कहा जा सकता है, एक सामाजिक महत्त्व देने की वृत्ति का उद्भव हुआ।

बहुत ही उच्च कोटि के सभ्य मनुष्य, जिनके सामाजिक सम्बंध आधुनिक सभ्यता की विषमता के साथ-साथ बहुत अधिक बढ़ गए हैं, इस आवश्यकता का अनुभव उतनी तीव्रता के साथ नहीं करते जितना वे मनुष्य जिन्हें अपने दैनिक कार्य में कोई रस दिखाई नहीं देता तथा जो दिन भर दफ्तर के कागज या दुकान के कपड़े उलटने में रत रहते हैं। इस प्रकार ज्यों-ज्यों अधिक घनिष्ट सामाजिक सम्बंधों की आवश्यकता बढ़ती गई है, रति-सम्बंध को विशुद्ध जीवात्मक क्षेत्र से निकाल कर व्यक्तिगत विकास का साधन बनाने की प्रवृत्ति इतनी सर्वव्यापी हो गई है कि आज के अधिकांश स्त्री-पुरुष व्यक्तिगत सन्तोष और सामाजिक सहयोग की भावना से लैंगिक-सम्बंध स्थापित करते हैं न कि सृष्टि का क्रम चलाने के लिए।

फिर भी वैवाहिक सम्बंध के जीवात्मक परिणाम आज भी संसार के लिए उतने ही महत्त्व-पूर्ण हैं जितने पहले कभी थे। आज भी गर्भाधान और सन्तानोत्पत्ति का वही क्रम है, जो गुफा-निवासी आदिम मानव के समय में था। अतएव आवश्यकता इस बात की है कि आज का सभ्य मनुष्य, जिसके अधिकांश यौन-सम्बंध विशुद्ध सामाजिक कारणों से होते हैं, इस सम्बंध के जीवात्मक परिणामों से बचने के लिए पूर्ण सतर्क रहे। ऐसा

करके ही वह इस नये सम्बंध की व्यक्तिगत और सामाजिक उपयोगिता को कायम रख सकता है ।

गर्भ-निरोध का महत्त्व

हर स्त्री को जो सभ्य जीवन बिताना चाहती है, गर्भ-निरोध के तरीकों का ज्ञान होना चाहिए। इस विषय की अनभिज्ञता का मूल्य अनेकों तकलीफों के रूप में चुकाना पड़ता है । आज की स्त्री केवल बच्चे पैदा करने के लिए संभोग नहीं करती। सच तो यह है कि उसकी परिस्थिति भी ऐसी नहीं होती कि गर्भ-धारण की इच्छा न होते हुए भी वह किसी भी समय अपने पति की इच्छा को टाल सके । इस युग की आर्थिक कठिनाइयां बड़े परिवार के विरुद्ध सबसे बड़ी दलील है तथा यह कहने की आवश्यकता नहीं कि समझदार माता-पिता वेहिसाब बच्चे पैदा नहीं कर सकते ।

हमारी आर्थिक कठिनाइयां तथा आधुनिक सभ्यता की जटिलताएं जितनी ही अधिक होती जा रही हैं, गर्भ-निरोध की आवश्यकता उतनी ही बढ़ती जा रही है। सभ्य मनुष्य बच्चे तभी पैदा करते हैं जब वह चाहते हैं, न कि अकस्मात और विना प्रयोजन के। लेकिन जिन कारणों से बच्चों की संख्या सीमित रखना आवश्यक है, ठीक उन्हीं कारणों से सामाजिक सहयोग तथा सजीवता-पूर्ण मनोरंजन के रूप में संभोग करना अनिवार्य होता जाता है । और इस दृष्टिकोण से गर्भ-निरोध का ज्ञान प्रत्येक

वयस्क के लिए और भी आवश्यक हो जाता है।

गर्भ-निरोध के तरीकों का न जानना वैवाहिक निराशा और प्रेम की असफलता का एक प्रधान कारण है। यह अज्ञान मानसिक गोपन और मानसिक निरोध के विकारों का कारण बन जाता है, और वैवाहिक जीवन के उन अमूल्य क्षणों को सदा के लिए नष्ट कर देता है जिनमें कुशल स्त्री और पुरुष विलक्षण मानवीय संवेदना का रोमांचकारी अनुभव करने की योग्यता रखते हैं।

ऐसे देश में, जिसकी शक्ति के स्तम्भ उसके योद्धा हैं, बच्चों की संख्या पर बन्धन लगाना तोपों का चारा ही कम करना नहीं बल्कि पुरुषों के पुश्तैनी अधिकारों पर आघात करना समझा जाता है। परन्तु वह देश जो अपनी रक्षा के लिए जनता की प्रसन्नता तथा अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग और शांति पर निर्भर रहता है, तथा जिसकी आबादी ऐसे चुने हुए लोगों की है जिनको उनके माता-पिता ने प्रेम से पैदा किया है और जिम्मेदारी के साथ पाला है, गर्भ-निरोध द्वारा बच्चों की संख्या सीमित रखना उतना ही आवश्यक समझता है जितना प्लेग की बीमारी को रोकना।

कोई भी व्यक्ति जिसके किसी कार्य से उसकी आर्थिक अवस्था खराब हो जाती है या उसके साथी अथवा समाज के कोई असह्य बोझ आ पड़ता है, अपने प्रेम-जीवन में की आशा नहीं कर सकता। अनचाहे बच्चे के ऊपर कितने बुरे मनोवैज्ञानिक असर पड़ते हैं तथा किस प्रकार वह

समाज का बोझ बन जाता है, इसे सभी जानते हैं। कहने का अभिप्राय यह है कि लैंगिक-सम्बंधों का अज्ञान केवल अनभिज्ञ व्यक्ति का ही जीवन चौपट नहीं करता बल्कि उन सभी लोगों पर अपना प्रभाव डालता है जो किसी भी प्रकार उस दूषित वातावरण के अन्दर आ जाते हैं। मानसिक विकारों की ही भांति अनभिज्ञता भी छूत की बीमारी है जिसका विपाक परिणाम अन्य क्षेत्रों में इतना घातक नहीं होता जितना वैवाहिक-सम्बंधों के क्षेत्र में।

लैंगिक प्रतिद्वन्द्विता का अभिशाप

वैवाहिक नैराश्य का दूसरा प्रधान कारण स्त्री और पुरुष के बीच प्रभुता और शान के लिए प्रतिद्वंद्विता है। इस प्रतिद्वंद्विता को आज हम बड़े स्पष्ट रूप में देख सकते हैं। कुछ अंशों में हम इसे उस आन्दोलन की ही एक शाखा कह सकते हैं जो आधुनिक नारी आज के शक्तिशाली पुरुष की निरंकुशता के विरुद्ध चला रही है। व्यक्तिवादी समाज के व्यापारिक कार्यों में एक जीवन-दायिनी शक्ति के रूप में प्रतिद्वंद्विता को चाहे हम जो भी महत्त्व दें, परंतु प्रेम के लिए तो प्रतिद्वंद्विता मृत्यु के समान है अथवा वह छिपी हुई चट्टान है, जिससे टकरा कर अनेक विवाह विचूर्ण हो चुके हैं।

हमें अनेक ऐसे प्रमाण मिले हैं जिनसे सिद्ध होता है कि इस प्रतिद्वंद्विता का इतिहास बहुत पुराना है। इसका उद्भव

करीब-करीब उसी समय हुआ जब व्यक्तिगत सम्पत्ति और उसके साथ ही पुरुष-जाति के प्रभुत्त्व पर आधारित पैतृक-समाज की उत्पत्ति हुई। आज भी हम एक ऐसे युग में रह रहे हैं, जब शासन पुरुष-जाति के हाथ में है तथा वही स्त्रियों के लिए नियम बनाते हैं। अबतक अनेक पेशे और कारोबार ऐसे हैं, जिनमें केवल पुरुष ही जा सकते हैं, बहुत से सरकारी या व्यापार सम्बन्धी महत्त्व-पूर्ण पद ऐसे हैं जो खुले-आम या अपरोक्ष रूप से स्त्रियों को नहीं दिये जाते। आज भी एक ही उद्देश्य की प्राप्ति में स्त्री और पुरुष साथ-साथ लगे हों तो जान-बूझकर स्त्री के रास्ते में पुरुष की अपेक्षा अधिक बाधायें डाली जाती हैं।

जिस समाज में भी स्त्री या पुरुष में से किसी एक का प्रभुत्त्व हो तथा दूसरे को अधीनता में रहना हो उसकी विशेषता ही होती है कि सारे उपयोगी गुण शासन करने वाले के तथा अवगुण शासित के समझे जाते हैं। इस प्रकार वर्तमान समाज के पुरुष साहस, वीरता, बुद्धि, उत्तरदायित्व, कौशल और ईमानदारी आदि गुणों पर जहां अपना एकाधिकार समझते हैं, वहीं स्त्रियों से पवित्रता, सुशीलता, नम्रता, कोमलता और सहज-बुद्धि आदि साधारण गुणों पर ही संतुष्ट रहने की आशा [illegible] कि स्पष्टतः स्त्री के ये गुण ही प्रभुत्त्वशाली पुरुष के [illegible] विकास कर सकते हैं।

करीब-करीब उसी समय हुआ जब व्यक्तिगत सम्पत्ति और उसके साथ ही पुरुष-जाति के प्रभुत्त्व पर आधारित पैतृक-समाज की उत्पत्ति हुई। आज भी हम एक ऐसे युग में रह रहे हैं, जब शासन पुरुष-जाति के हाथ में है तथा वही स्त्रियों के लिए नियम बनाते हैं। अबतक अनेक पेशे और कारोबार ऐसे हैं, जिनमें केवल पुरुष ही जा सकते हैं, बहुत से सरकारी या व्यापार-सम्बंधी महत्त्व-पूर्ण पद ऐसे हैं जो खुले-आम या अपरोक्ष रूप से स्त्रियों को नहीं दिये जाते। आज भी एक ही उद्देश्य की प्राप्ति में स्त्री और पुरुष साथ-साथ लगे हों तो जान-बूझकर स्त्री के रास्ते में पुरुष की अपेक्षा अधिक बाधायें डाली जाती हैं।

जिस समाज में भी स्त्री या पुरुष में से किसी एक का प्रभुत्त्व हो तथा दूसरे को अधीनता में रहना हो उसकी विशेषता ही होती है कि सारे उपयोगी गुण शासन करने वाले के तथा अवगुण शासित के समझे जाते हैं। इस प्रकार वर्तमान समाज के पुरुष साहस, वीरता, बुद्धि, उत्तरदायित्त्व, कौशल और ईमानदारी आदि गुणों पर जहां अपना एकाधिकार समझते हैं, वहीं स्त्रियों से पवित्रता, सुशीलता, नम्रता, कोमलता और सहज-बुद्धि आदि साधारण गुणों पर ही संतुष्ट रहने की आशा करते हैं,क्योंकि स्पष्टतः भी ये ये गुण ही प्रभुत्त्वशाली पुरुष के गुणों का पूर्ण विकास कर सकते हैं।

स्त्री को पवित्र रहना ही चाहिए नहीं तो पुरुष उसका एक-मात्र रक्षक और उद्धारक कैसे प्रतीत होगा ? यदि स्त्री विनम्र न

ते तो पुरुष के साहस का उपयोग ही कहां होगा ? स्त्री को घर से
म होना इसलिए आवश्यक है कि पुरुष का बाहर का व्यापार
न्भ्रांत प्रतीत हो। दूसरी तरफ पुरुषों का एक ऐसा भी वर्ग है
जो बातूनीपन, गैर-जिम्मेदारी, धोखेबाजी, अपवित्रता, अशक्तता
तथा झगड़ालूपन आदि को स्त्रियों के आचरण का आवश्यक
अङ्ग समझता है। जहां 'पुरुषत्त्व' में अनेक अच्छे गुणों का
समावेश किया जाता है, वहीं 'नारीत्व' का अर्थ दुर्बलता और
दीनता लगाया जाता है। जब पुरुष कहीं असफल हो जाता है
तो कहा जाता है कि अभाग्यवश उसमें स्त्रियोचित गुणों की
प्रधानता हो गई है। परन्तु यदि स्त्री कोई महत्त्व-पूर्ण कार्य कर
डाले तो उसे पुरुषोचित गुणों का चमत्कार बताया जाता है,
अर्थात् वह सच्चे अर्थों में स्त्री नहीं है बल्कि स्त्री के शरीर में
पुरुष है।

चुका था; ईव की रचना उसने अवशेष-मात्र से की थी। ईसाई सन्त पॉल का यह कथन कि 'निरन्तर जलते रहने से से विवाह कर लेना ही अच्छा है', दूसरे शब्दों में पैतृक समाज के इस दृष्टिकोण का ही प्रतिपादन है कि स्त्री एक आवश्यक बुराई है।

'धर्म' स्त्रियों का सबसे बड़ा शत्रु रहा है। जिस भी स्त्री ने पुरुष की दासता से बाहर निकलने का प्रयत्न किया अथवा जिसने विशेष कौशल या बुद्धि प्राप्त कर ली, तुरन्त उसे 'डाइन' या "जादूगरनी' की संज्ञा मिली तथा इस प्रकार उसकी यातना की जाने लगी मानो वह शैतान के कब्जे में आगई हो। सदियों तक लोग 'डाइनों' का शिकार करते रहे हैं तथा उन्हें जलाते रहे हैं। निस्सन्देह इसके पीछे यही धारणा रही है कि कैसे कोई स्त्री बिना शैतान' के प्रभाव में आये बुद्धिमानी और कौशल दिखा सकती है! शायद आज भी अधिकांश वयस्क स्त्री की प्राकृतिक हीनता की बात में विश्वास करते हैं तथा बच्चों में भी इस गलत धारणा को भर देते हैं। बहुत कम लोग इस बात को जानते हैं कि आज भी संसार के कई भू-भाग ऐसे लोगों से आबाद हैं जहां पुरुष स्त्री का प्रभुत्व मानते हैं। इसी प्रकार उससे भी कम लोग हैं जिन्हें मालूम है कि केवल कुछ हजार वर्ष पूर्व ही ग्रीस और मिस्र के अत्यंत ऊंचे कृषि-प्रधान समाज में मातृक सभ्यता प्रचलित थी तथा स्त्री उसी प्रकार शासक थी जैसे आज पुरुष।

प्राचीन मिस्र में बच्चे का नाम माता के वंश के अनुसार रखा

जाता था न कि पिता के। वृद्धा स्त्रियां युवकों से शादी करती थीं। विवाह से पहले पुरुषों को अखण्ड ब्रह्मचर्य रखना पड़ता था, जब कि स्त्रियों के लिए कौमार्य आवश्यक न था। पुरुष को अपने विवाह में दहेज लाना पड़ता था, स्त्री अपने तथा अपने पति के वृद्ध माता-पिता के निर्वाह की शपथ लेती थी। पुरुषों को शृंगार तथा रीति के अनुसार फ़ैशन करना पड़ता था, गृहस्थी संभालने के लिए घर के अन्दर रहना पड़ता था, जबकि स्त्री साल भर एक ही प्रकार के कपड़े पहन कर बाहर का काम-काज संभालती थी, और शृंगार को तुच्छ ही नहीं समझती थी, बल्कि अपने पति के बातूनीपन और क्षुद्र बुद्धि का मजाक भी उड़ाती थी।

इससे सिद्ध होता है कि 'पुरुषोचित' और 'स्त्रियोचित' चरित्र जैसी कोई वस्तु नहीं होती। आज जो हम देखते हैं किसी जमाने में बिल्कुल इसके विपरीत था। इतना ही नहीं, विशुद्ध कृषि संस्कृति वाले समाजों में आज भी वही बात है। 'पुरुषोचित' का साधारण अभिप्राय प्रभुता वाली जाति से तथा 'स्त्रियोचित' का अभिप्राय आश्रित जाति से है। वर्तमान पक्षपात अस्वाभाविक है, इसे इतिहास तथा पुरातत्त्व शास्त्र से ही नहीं, वरन् हम इस बात से भी जान सकते हैं कि यदि स्त्रियों की हीनता स्वाभाविक चीज़ होती तो उनके लिए इतने नियम बनाने की आवश्यकता न पड़ती तथा उन्हें अपनी पुरानी प्रभुता-पूर्ण परिस्थिति को पुनः प्राप्त करने से रोकने के लिए इतने षड्यन्त्र रचने की आवश्यकता न होती। किसी मूर्ख को न्यायाधीश बन जाने या किसी अयोग्य व्यक्ति

समझी जाती थी, परन्तु व्यक्तिगत सम्पत्ति के साथ ही प्रत्येक पिता के लिए अपने पुत्र को पहचानना परमावश्यक हो गया। हर पिता चाहता था कि कठोर परिश्रम से पैदा किए हुए खेतों और जानवरों का उत्तराधिकारी उसकी औरस सन्तान ही बने। इस परिवर्तन के साथ ही स्त्री के 'कौमार्य' को जिसकी तरफ लोगों का अबतक ध्यान न था, एक सामाजिक महत्त्व दिया जाने लगा। पुरुष के लिए कुमारी स्त्री से विवाह करना आवश्यक हो गया, जिससे वह निश्चित रूप से जान सके कि प्रथम संभोग से उत्पन्न पुत्र उसकी औरस सन्तान है। धीरे-धीरे स्त्री की पवित्रता पर आवश्यकता से अधिक ज़ोर दिया जाने लगा। स्त्री को इससे कोई लाभ न था, परन्तु पुरुष के लिए, जो समाज की पैतृक व्यवस्था को दृढ़ बनाए रखना चाहता था, यह एक जबरदस्त अस्त्र था। यहीं से उत्तराधिकारी के रूप में पुत्र का महत्त्व बढ़ने लगा तथा लड़की का मूल्य कम हो गया। इतना ही नहीं, स्त्रियों को भी जानवरों की ही तरह एक ऐसी सम्पत्ति समझा जाने लगा, जिसका सौदा करके भूमि और जानवर बढ़ाए जा सकते थे।

मानव-संस्कृति के इतिहास में पुरुषों द्वारा लादी गई इस दासता के विरुद्ध स्त्रियों ने कई बार विद्रोह किया, उन्हें थोड़ी बहुत सफलता भी मिली, लेकिन समाज का आर्थिक ढांचा जबतक इसी प्रकार बना रहा तथा सम्पत्ति के उत्पादन में स्त्रियां जबतक पुरुषों के बराबर हिस्सा न ले सकीं तबतक उनकी स्वतंत्रता दूर की ही चीज बनी रही। सूक्ष्म-दर्शक-यन्त्र(माईक्रोस्कोप)के आविष्कार के

को प्रधान-मन्त्री बन बैठने से रोकने के लिए कानून बनाने की आवश्यकता नहीं पड़ती।

वैषयिक नैतिकता का ऐतिहासिक उद्गम

समाज का ढांचा मातृक (मैट्रिआरकल) से बदल कर पैतृक (पैट्रिआरकल) कैसे हो गया यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। केवल इतना निश्चित है कि यह परिवर्तन व्यक्तिगत सम्पत्ति के विकास की उस अवस्था के साथ-साथ आया जब मनुष्य ने सामूहिक कृषि-व्यवसाय वाली सभ्यता से आगे बढ़ कर चरवाहों की व्यक्तिवादी सभ्यता में प्रवेश किया। जिस समय प्रथम मानव ने पहाड़ी भेड़-बकरियां, गाय, ऊंट या घोड़े को पकड़ कर पालना आरम्भ किया तथा उनके लिए चरागाह की कुछ भूमि को घेर लिया, ठीक उसी समय व्यक्तिगत सम्पत्ति की सृष्टि हुई। कृषि कार्य में स्त्री और पुरुष समान रूप से भाग ले सकते थे, परन्तु जानवरों को चराने तथा उनका नियन्त्रण करने में पुरुष की श्रेष्ठतर शक्ति स्त्री की अपेक्षा अधिक उपयोगी सिद्ध होने लगी। इन जानवरों ने ही मनुष्य को श्रेष्ठता प्रदान की। यह एक समाज-शास्त्र का नियम है कि जो जाति जीवन-निर्वाह के साधन जुटाने में प्रधान भाग लेती है प्रभुता उसीके हाथ में चली जाती है और तब दूसरी जाति पर यह अपने स्वार्थ-साधन के लिए शासन करने लगती है।

* समाज में अपने पिता की जानकारी अनावश्यक

मनुष्य इसका विकास इसलिए [illegible] है कि उसे [illegible] की अवस्था में अपने अनुकूल स्थान के [illegible] है। [illegible] एक ऐसे गहरे हीन-भाव (इन्फीरियॉरिटी कॉम्प्लेक्स) से पीड़ित है जो उसे अपने अभावों को छिपाने के लिए [illegible] को मजबूर करता है। सारी [illegible] [illegible] इस युग की पैतृक परम्परा तथा पूर्व [illegible] [illegible] [illegible] परम्परा के बीच घोर संघर्ष का युग [illegible] [illegible] की विवाह परम्परा तीव्र गति से छिन्न भिन्न हो रही है इसमें सन्देह नहीं।

[illegible] आचरण-शास्त्र बनाम प्राचीन मनोविज्ञान

ऊपर की बातें समझ लेने के बाद इसमें जरा भी आश्चर्य नहीं मालूम होता कि वैवाहिक संघर्ष और सुधार के इस युग में विषय सम्बंधी अनेक ऐसे विचार दिखाई देते हैं जिनका कारण यह है कि स्त्री-जाति सामाजिक और वैवाहिक क्षेत्र में केवल अपना महत्त्व ही नहीं वरन् कई अर्थों में अपनी पुरुष से श्रेष्ठता सिद्ध करने का प्रबल प्रयत्न करती है। इसी प्रकार इसमें भी कोई आश्चर्य नहीं कि अन्य बहुत से विचार पुरुष द्वारा अपने परम्परागत अधिकारों तथा कृत्रिम प्रभुत्वों की रक्षा करने की तीव्र प्रेरणा के फल-स्वरूप उत्पन्न हो रहे हैं। मनुष्य जिस वातावरण, काम-काज, आर्थिक तथा राजनैतिक परिस्थिति में रहता है उससे उत्पन्न सम्बंधों के अनुकूल ही उसका आचरण बनता है।

बाद विज्ञान ने सिद्ध कर दिया कि जहां तक प्रकृति का प्रश्न है स्त्री और पुरुष समान हैं, दोनों में कोई प्राकृतिक अन्तर नहीं है तथा शिशु के सृजन में दोनों का ही बराबर हिस्सा है।

इस दृष्टि से सूक्ष्म-दर्शक-यन्त्र को हम स्त्री जाति का प्रथम उद्धारकर्ता कह सकते हैं, परन्तु स्त्री की वास्तविक स्वतंत्रता की चरम सीमा उस वक्त पहुंची जब मशीन का आविष्कार हो गया। मशीन की बारीकियां ज्यों-ज्यों बढ़ती गईं, सम्पत्ति के उत्पादन में पुरुष का मुकाबला करने की स्त्री की योग्यता भी उतनी ही बढ़ती गई। स्त्री की इस स्वतंत्रता का आरम्भ १६वीं शताब्दी में हुआ तथा अपने प्राचीन प्रभुत्व की रक्षा के लिए चिन्तित पुरुष द्वारा उपस्थित की गई अनेक बाधाओं के बावजूद भी उसका क्षेत्र निरन्तर बढ़ता जा रहा है। यहां तक कि आज सभ्य समाज में पुरुष के अहं-रूपी किले के एक दो ही ऐसे मोर्चे रह गए हैं जो स्त्री द्वारा जीते जाने को शेष हैं।

जब हम अपने पड़ोसी जानवरों को देखते हैं तो हमें उनके वैषयिक जीवन (सेक्सुअल लाइफ) में उच्च श्रेणी का सहयोग मिलता है। एक ही हिरणी के प्रीति-भाजन बनने के लिए दो हिरणों में कितनी प्रतिद्वन्द्विता क्यों न हो, परन्तु हिरण और हिरणी के बीच संघर्ष जैसी वस्तु कभी सुनी भी नहीं गई। स्त्री और पुरुष के बीच प्रतिद्वन्द्विता निश्चय ही मानव-मस्तिष्क के अधिक विकास तथा उसकी आवश्यकता से अधिक क्रिया-शीलताकी उपज है। लैंगिक प्रतियोगिता एक स्पष्ट मानवीय दुर्गुण है।

शरण लेते देखा गया है। ऐसे पुरुष बन्धन-मुक्त नारी की भयंकर दमना के सामने एक दिन भी नहीं टिक सकते। यही वैवाहिक प्रतिद्वंद्विता प्रेम-जीवन को एक ऐसा अखाड़ा बना देती है जिसमें निरारा स्त्री और पुरुष एक दूसरे को नीचा दिखाने के प्रयत्न, में संघर्षों का अस्वाभाविक प्रदर्शन करते दिखाई पड़ते हैं।

सैकड़ों में केवल एक-दो स्त्रियां ऐसी होती हैं जो स्त्री-पुरुष की स्वाभाविक समानता में विश्वास करती हुई ऐसा जीवन व्यतीत करती हैं, मानो इन्हें 'स्त्रीत्व' के समस्त अधिकार प्राप्त हों। शेष सभी ऐसी होती हैं जो पैतृक समाज की वर्तमान परम्परा से हार मान चुकी होती हैं और ऐसी हालत में या तो अपनी सारी मनोवैज्ञानिक शक्ति पुरुषों और पुरुषत्व का अनुकरण करने में लगा देती हैं या अपनी दुर्बलता और परवशता के प्रदर्शन द्वारा पुरुष के प्रभुत्वों पर सीधा वार न करके उसे अपना बनाने के प्रयत्न में एक नकली विजयोल्लास का अनुभव करती हैं। प्रत्येक अवस्था में दोनों ही प्रकार की ये स्त्रियां—चाहे वह पुरुषत्व का अनुकरण करने वाली स्त्री हों या लता की भांति पुरुष का आश्रय खोजने वाली—पुरुषत्व का अतिरंजित मूल्य लगाती हैं तथा 'नारीत्व' को एकदम मूल्य-हीन चीज समझती हैं। अंतर केवल उनके तरीकों में है—एक की मिथ्या प्रशंसा का रूप अनुकरण है तथा दूसरी का विवशता, जिसका आधार परुष [illegible] तथा कौशल है।

लिंग-परिवर्तन की प्रवृत्ति

प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक एडलर ने स्त्री में अपनी अवस्था के प्रति असंतोष की प्रवृत्ति को 'पुरुष-श्रेष्ठता की भावना' (मैस्कुलिन प्रोटेस्ट) कह कर व्यक्त किया है, परन्तु इससे असली भाव स्पष्ट नहीं हो पाता। इसकी जगह पर यदि हम 'पुरुषत्व की तरफ प्रवृत्त होना' (एण्ड्रोट्रॉपिज्म) शब्द का प्रयोग करें तो इससे स्त्री के मनोवैज्ञानिक आचरण के उस लक्षण का ठीक बोध होता है जिसमें वह स्त्री होने की दशा से असंतुष्ट होकर इस प्रकार आचरण करती है मानो वह पुरुष बन सकती है। इसी प्रकार 'स्त्रीत्व' की तरफ प्रवृत्त होना (जेनोट्रापिज्म) एक ऐसा समानान्तर शब्द होगा जिसका प्रयोग पुरुष द्वारा स्त्रैण सिद्धांतों का अति-रंजित मूल्य लगाने की प्रवृत्ति के अर्थ में किया जा सकता है। समजातीय कामुक मनुष्य (होमोसेक्स्वल्स) प्रायः स्त्रीत्व की ओर प्रवृत्त होते देखे जाते हैं।

स्पष्ट है कि काम-वृत्ति सम्बंधी इस प्रतिद्वंद्विता को लोग प्रेम और विवाह के क्षेत्र में ही कार्यान्वित करने का अवसर पाते हैं। लेकिन दूसरी तरफ यह एक कठोर मनोवैज्ञानिक सत्य है कि जहां एक साथी अपनी श्रेष्ठता प्रदर्शित करने के लिए दूसरे का दुरुपयोग कर रहा है वहां प्रेम-सम्बंध का सुखी होना असम्भव है। ऐसे विकृत-मानस लोग, जो समझते हैं कि प्रेम-सम्बंध में अपेक्षाकृत उतना ही अधिक आनन्द आता है . . .

डालने में कठिनाइयों का सामना करना पड़े, प्रेम का सहज और स्वाभाविक आनन्द कभी नहीं उठा पाते, क्योंकि व्यक्तिगत सुरक्षा की दृष्टि से किया हुआ कठोर प्रयत्न प्रेम-सम्बंध को विकृत और पंगु बना देता है।

भय और अज्ञान जीवन-यापन की कला को विकृत ही नहीं कर देते, बल्कि दो व्यक्तियों के स्वाभाविक प्रेम सम्बंध को सदा के लिए समाप्त कर देते हैं। अनेक स्त्रियों का दूषित शिक्षा के कारण यह विश्वास बन जाता है कि पुरुष हमेशा इसी ताक में रहता है कि वह स्त्री से कितना फायदा उठा ले। ऐसी स्त्री के लिए यह असम्भव है कि वह बिना यह समझे कि उसने अपना व्यक्तित्व खो दिया तथा वह पुरुष की दासी बन गई, अपना सर्वस्व निछावर कर सके। इसी प्रकार एक ऐसे पुरुष के लिए जिसे बचपन से यह विश्वास कराया गया है कि स्त्री झूठी और विश्वास के अयोग्य होती है, अपनी पत्नि के साथ पवित्र सम्बंध स्थापित कर पाना असम्भव है, चाहे ऊपर से वह कितना भी प्रेम का स्वांग क्यों न करे।

प्रेम के क्षेत्र में प्रतिद्वन्द्विता की भावना का एक सबसे स्पष्ट लक्षण यह वस्तु है जिसे कामोद्दीपक आकर्षण (सेक्स अपील) कहते हैं। जानवरों की दुनिया में प्रत्येक नर में नारी के लिए तथा नारी में नर के लिए सहज आकर्षण होता है। परन्तु हमारी लैंगिक प्रतिद्वन्द्विता-युक्त सभ्यता में जो स्त्री या पुरुष वासना जागृत करने वाले आचरणों या मनोरंजन करके

पर, उनकी भी स्त्रियों ही जैसी अवस्था होती है। खतरनाक अवस्था में पहुंचने पर उनके भी व्यक्तिगत जीवन में संघर्ष तथा बाह्य सम्बंधों में असन्तोष और बेचैनी का आ जाना अवश्यंभावी है। वैवाहिक जीवन में अधिकांश मन-मुटाव इस समय ही पैदा हो जाते हैं, जब कि थोड़े सन्तोष और आवश्यकतानुकूल जीवन-प्रणाली को बदलने से ही सुखी और परिपक्व वृद्धावस्था का रास्ता साफ किया जा सकता है।

समाज में व्यभिचार (ऐडल्टरी) की समस्या क़रीब-क़रीब एकदम इस 'लैंगिक प्रतिद्वन्द्विता' का ही परिणाम है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि कई ऐसे भी मामले होते हैं जिनमें थोड़ा 'शिष्ट-व्यभिचार' (पोलाईट ऐडल्टरी) एक दूषित वैवाहिक समस्या का सर्वोत्तम हल बन जाता है, परन्तु ऐसे मामलों की संख्या नगण्य है। व्यभिचार के अधिकांश मामलों में—चाहे वे स्त्री द्वारा किये गये हों या पुरुष द्वारा—धोखा देने वाले की प्रेरक-भावना दूसरे साथी को सजा देने या उसके ऊपर प्रभुत्त्व स्थापित करने की ही होती है। यदि कोई पुरुष अपनी पत्नी से धोखा करता है, या पत्नी के संग में तो नपुंसक हो जाता है, परन्तु दूसरी स्त्रियों के साथ पुंसत्व अनुभव करता है—जैसा कि प्रायः देखा गया है—तो इसका मनोवैज्ञानिक अर्थ यह है कि "तुम मेरे लिए अपर्याप्त हो, अतएव मैं अपनी वासना की तृप्ति अन्यत्र करूंगा।"

जब स्त्री व्यभिचारिणी हो जाती है तो साधारणतः

कारण होता है पति द्वारा मिथ्या-प्रभुत्त्व स्थापित करने का घोर विरोध। व्यभिचार में प्रवृत्त होकर वह केवल अपना विद्रोह ही नहीं वरन् श्रेष्ठता भी प्रकट करना चाहती है। उसकी दृष्टि में धोखा खाकर उसका पति मूर्ख और पतित बनता है। जब पति अपनी पत्नी को धोखा देता है तो लोग उसे बहुतेरों में से एक समझ कर माफ कर देते हैं, परन्तु जब वह अपनी पत्नी से धोखा खा जाता है तो लोग उसे एक निकृष्ट और अधम प्राणी समझते हैं। इस प्रकार व्यभिचार के क्षेत्र में भी हम पुरुष की प्रभुता का अस्तित्व देखते हैं।

लैंगिक प्रतिद्वन्द्विता का दुःखान्त

यदि हम लैंगिक प्रतिद्वन्द्विता के विविध प्रकारों का वर्णन अपने समाचार-पत्रों, उपन्यासों और फिल्मों से निकाल दें तो संभवतः इनकी नवीनतम प्रवृत्तियों का अध्ययन करने वालों के लिए कोई दिलचस्प मसाला ही न रह जायगा। अब तक का हमारा अनुभव यह है कि इस विषय की जितनी भी लिखित सामग्री मिलती है सभी स्त्री और पुरुष के बीच एक दूसरे के ऊपर प्रभुता जमाने की होड़ का विवरण है। संभव है कुछ पाठक समझने लगें कि हमारे जैसे मनोवैज्ञानिक एक ऐसे मनहूस समाज की वकालत कर रहे हैं, जिसमें किसी भी प्रकार की
...ा न होगी और इसके फलस्वरूप आधुनिक जीवन की
(एरोटिक टिलस) ...

इसमें तनिक भी तथ्य नहीं है। मानवीय विकास के लिए प्रतिद्वन्द्विता को हम एक स्वाभाविक प्रेरक-शक्ति समझते हैं, परन्तु आज की लैंगिक प्रतिद्वन्द्विता का अधिकांश न केवल अनावश्यक ही है, बल्कि इससे प्रतिद्वन्द्वियों के मानसिक स्वास्थ्य पर इतना जबरदस्त धक्का लगता है कि इस विपाक होड़ से निकलने पर उनका शरीर एकदम क्षीण, तथा मस्तिष्क सर्वथा विकृत हो जाता है। और ये विकृत प्राणी हमारे सामाजिक स्वास्थ्य की एक समस्या बन जाते हैं।

यदि आप समजातीय-कामुक पुरुषों (होमोसेक्सवल्स) का वह अड्डा देखें, जहां अनेक पुरुष, जिनमें से कई स्त्रियों की वेश-भूषा धारण किये हुए होते हैं, एक दूसरे के साथ नाच रहे होते हैं; यदि आप उन 'विचित्र' स्त्रियों का अध्ययन करें जिनकी स्वकामुक प्रवृत्तियां (लेस्बियन टेण्डेन्सीज) उन्हें अपने शरीर और मन दोनों को विकृत बना लेने पर मजबूर करती हैं, तो आप इस मिथ्या लैंगिक प्रतिद्वन्द्विता द्वारा पैदा हुई भयंकर बर्बादी का थोड़ा अनुमान लगा सकते हैं। यदि आप उन 'निर्जीव' स्त्रियों का बड़ा समूह देखें जो इस प्रतिद्वन्द्विता के भय से कहीं चित्रकारी करके, चाय की कोई दुकान चलाकर या ईसाई पैशानिक, दफ्तर की नौकरी या वेश्या का पेशा ग्रहण करके तथाकथित उदात्तिकरण (सब्लिमेशन) खोजती फिरती हैं, तो आप इस बात से सहमत होंगे कि इस प्रतिद्वन्द्विता का फल समाज के लिए एक बड़ा अभिशाप है। जिस व्यक्ति को उसकी बर्बादी

स्त्री को किसी आकर्षक पेशे में जाने से केवल इसलिए ...ा जाता है कि पुरुष ने उसे स्त्रियों के लिए वर्जित कर ... यही समझ सकती है कि पैतृक आदर्शों और सांस्कृतिक ...ओं ने स्त्री जाति को कितनी बुरी तरह जकड़ रखा है ...न लैंगिक प्रतिद्वन्द्विता का परिणाम कितना भयङ्कर हो ...है।

...हम इस समय घरों में रात-दिन काम करने वाली दासियों ...नौकरानियों, कारखानों में खून-पसीना एक करने वाली ...मजदूरिनों, पैतृक समाज द्वारा दण्डित अविवाहित ... विलास की जंजीरों में जकड़ी हुई रखेलियों तथा ...में टाईप और क्लर्को का काम करने वाली उन अगणित ...लड़कियों की बात नहीं करते, जिनको दुनिया की सारी ...का बोझ केवल इसलिए उठाना पड़ता है कि वे स्त्री हैं ...ने को जीवित रखने के लिए पुरुषों की गुलामी करने के ...उनके पास और कोई उपाय नहीं है। यहां तो हमारा अभि-...क प्रतिद्वन्द्विता के अनेक दुष्परिणामों की तरफ ध्यान ... करके केवल यह बतलाना है कि विजयी और विजित ... को आज इस अभिशाप की कितनी मंहगी क़ीमत ...ड़ रही है। हम तो यही चाहेंगे कि लोग इसे एक मनो-... आदेश की भांति ग्रहण करें कि 'जिस भी व्यक्ति ने ... या पुरुष साथी की निन्दा की या उसके आत्म-सम्मान ...पहुंचाई, उसने सदा के लिए अपने वैवाहिक आनन्द पर

कुठाराघात कर लिया।'

भावात्मक अपरिपक्वता का रोग

अब हम प्रेम सम्बंधों में नैराश्य के तीसरे कारण—भावात्मक अपरिपक्वता या कल्पनात्मक आदर्शवाद का वर्णन करते हैं। भावात्मक अपरिपक्वता से वैवाहिक असन्तोष का बढ़ना अनिवार्य है, क्योंकि सच्चा आनन्द केवल परिपक्व सम्बंधों से ही उत्पन्न हो सकता है। मनोविज्ञान की खोजों ने यह भलीभांति सिद्ध कर दिया है कि ऐसे वयस्कों की संख्या बहुत कम है जो अवस्था के साथ मस्तिष्क से भी वयस्क हों। यदि हम अपने रोज के मिलने-जुलने वालों का ध्यानपूर्वक निरीक्षण करें तो हम देखेंगे कि उनमें से अधिकांश मानसिक परिपक्वता की दृष्टि से बच्चों की भांति कच्चे, उत्तरदायित्व संभालने में डरपोक, सामाजिक अभियोजन (सोशल ऐडजस्टमैंट) के अनुपयुक्त तथा स्वप्न और कल्पना की दुनिया में हवाई किले बनाने में मस्त रहते हुए अज्ञान के अंधेरे में प्रकाश के लिए भटकते रहते हैं।

आप आज के सनसनीपूर्ण पत्र-पत्रिकाओं को देखिए, उन फिल्मों को देखिए जो आज मानसिक अपरिपक्व मनुष्यों के लिए धर्मग्रन्थ-से बने हुए हैं, तो आप हमारे सभ्य-समाज में मानसिक वयस्कता के अभाव की मात्रा का अन्दाजा लगा सकेंगे।

(१) मूर्ख माता-पिता द्वारा किया हुआ बच्चों

प्यार है जो उन्हें कल्पना की दुनिया में

बन्द रखकर जीवन की कठोर वास्तविकताओं के निकट भी नहीं आने देता। फिल्मों के निर्माता इन अपरिपक्व तथा कल्पनामग्न वयस्कों की विकृत इच्छाओं को भलीभांति समझते हैं। विज्ञापन करने वाली कम्पनियां जानती हैं कि इन वयस्क बच्चों की झूठी शान और अहं को किस प्रकार संतुष्ट किया जा सकता है। और यही कारण है कि इनकी लम्बी जेबें भरने वाले हमारे वयस्क ही हुआ करते हैं। जब किसी राजनीतिज्ञ को भावुक नारे लगाकर वोट लेना होता है तो वह भी इस वर्ग के ही सहारे सफलता प्राप्त करता है।

वयस्कों की मानसिक अपरिपक्वता वैवाहिक नैराश्य का प्रधान ही नहीं सर्वव्यापी कारण भी है। यह व्यक्ति को वास्तविकता से दूर रखकर व्यवस्थित सामाजिक जीवन के एकदम अयोग्य बना देती है। जो स्त्री पुरुष की प्रभुता को अपने ऊपर अन्याय समझकर उसके प्रति विद्रोह करती है, हो सकता है कि आरम्भ के थोड़े दिनों को छोड़कर बाद में उसका वैवाहिक जीवन सुखी हो जाय क्योंकि ऐसा करके वह जीवन की एक कठोर वास्तविकता के प्रति अपनी सामान्य प्रतिक्रिया प्रकट करती है। इसी प्रकार वह पुरुष जो पुरुषत्व की धाक जमाने के लिए अपनी जवानी का अधिकांश 'मजनू' बनकर चक्कर लगाने में बिता देता है, परन्तु उमर बढ़ने के साथ-साथ अपनी जिम्मेदारी समझने लगता है, अपने पिछले जीवन के बावजूद भी एक आदर्श पति या पिता बनकर समाज के लिए उपयोगी

सिद्ध हो सकता है।

परन्तु वह लड़की जो अपने को स्वर्ग की परी समझ कर आशा करती है कि सारी दुनिया उसके ऊपर निछावर होगी तथा वह लड़का जो अपने को एक विशिष्ट व्यक्ति मानकर प्रत्येक नारी की आराधना को अपना जन्म-सिद्ध अधिकार समझता है, शायद ही कल्पना के इस माया-जाल से निकल कर धरती पर पैर रख सके। इनका उपचार तो तभी हो सकता है जब एक नये सिरे से इनका मनोवैज्ञानिक काया-कल्प किया जाय। उपन्यासों के पृष्ठ इनकी ही रोमांचकारी कहानियों तथा दुःखान्त जीवन-वृत्तान्तों से भरे हुए मिलते हैं। पागलखानों में हम इसी विकृत-वर्ग की चलती-फिरती मूर्तियां देखते हैं।

कल्पनात्मक भ्रान्ति

एक हाथी का सुई की नोक से निकल जाना आसान है किन्तु बचपन के बिगड़े हुए व्यक्ति का विवाह जैसे सहयोग-कार्य में सफल हो पाना असम्भव है। कल्पनात्मक आदर्शवादी को जीवन में चाहे बार-बार धक्के क्यों न खाने पड़ें, उसे अपनी कल्पनात्मक सूझ पर इतना अटूट विश्वास होता है कि वह कभी सुधर नहीं सकता। अपनी असफलता को भी वह उन्हीं विश्वासों के रंग में रंग लेता है। अपने साध्य के अनुकूल ही वास्तविकता को भी विकृत दृष्टि से देखकर एक काल्पनिक सफलता की भावना में मग्न रहता है। ऐसे लोगों का सारा जीवन ही बचपन

के बीते हुए आनन्दों को फिर से लौटा लाने के व्यर्थ प्रयत्नों में बीत जाता है।

अतिशय लाड़-प्यार से बिगड़े हुए इन वयस्क बच्चों को प्रायः लोग 'शरीफ' कहकर पुकारते हैं, क्योंकि उन्हें जो कुछ कहा जाय, आंख मूंदकर कर डालते हैं, किसी जिम्मेदारी के काम में हाथ नहीं डालते तथा हमेशा माँ-बाप से चिपके रहते हैं। इनके कार्यों का क्षेत्र मां-बाप की आज्ञाओं तक ही सीमित रहता है। ऐसे लोगों ने यदि शादी की और कहीं संयोग से ऐसी पत्नी मिल गई जो माता-पिता की ही भांति उनकी आदतें बिगाड़ने वाली निकली तो उनका वैवाहिक जीवन तो एक अर्थ में सफल हो जाता है, परन्तु उनकी सन्तान पर इसका बड़ा बुरा असर होता है। वे अपने बच्चों के ऊपर बहुत अधिक लाड़-प्यार की वर्षा करके अपनी मनोविकृति की छूत दूसरी पीढ़ी तक पहुंचा देते हैं।

ऐसे माता-पिताओं का सन्तान-प्रेम इतना अन्धा होता है कि वे इन अभागे बच्चों का उपचार भी ठीक ढङ्ग से नहीं होने देते। शायद ही कोई मानसोपचार-शास्त्रज्ञ ऐसा हो जिसे इन बच्चों के उपचार में माता-पिता की अन्धी ममता से बाधा न पहुंची हो। इस प्रकार के लड़कों को यदि आप कोई उपयोगी व्यवसाय सिखाना चाहें तो उनका मन काम में बिल्कुल न लगेगा और बार-बार आपकी तबीयत उन्हें जोर से चांटे लगाने की होगी। ऐसे लड़के-लड़कियों को सुधारने में बेचारे मास्टरों की

हो जाती है तथा कड़ी मफ़ का प्रयोग करने की नौबत आ जाती है।

परन्तु इतना सब होते हुए भी हमें इन अभागों के साथ—जो पीढ़ियों से चले आते हुए दूषित शिक्षा के आदर्शों के शिकार हैं—महानुभूति से ही काम लेना चाहिए। स्पष्ट है कि इन लोगों को दुनिया का जो नक्शा बताया गया है उसके अनुसार उनका आचरण एकदम ठीक और तर्क युक्त है। न तो हम ऊबकर उन्हें छोड़ ही सकते हैं, और न उनकी विवशता और भोलेपन को अच्छा ही कह सकते हैं। सच तो यह है कि इन व्यक्तियों को उनके आदर्शवादी सपनों से जगाकर उपयोगी नागरिक न बनाना एक बड़ा अपराध है।

इन भावुक आदर्शवादियों को हम कई श्रेणियों में बांट सकते हैं। एक तरफ तो वे लड़कियां हैं जिनके माता-पिता ने उनकी सुन्दरता और विशेषताओं का इतना जबरदस्त सिक्का उनके दिलों पर बिठा दिया है कि उन्हें कोई पुरुष अपने योग्य जंचता ही नहीं। यदि कोई पसन्द भी आता है तो वह या तो किसी नाटक, चलचित्र, या उपन्यास का नायक होता है, अथवा कोई विवाहित पुरुष होता है। अभिप्राय यह है कि अपने मन में वे हमेशा किसी अलौकिक देवकुमार की ही खोज में लगी रहती हैं। असलीयत को तो जैसे वे समझती ही नहीं। परिणाम यह होता है कि थोड़े ही दिनों में उनका स्वभाव चिड़चिड़ा तथा हर चीज की आलोचना करने वाला बन जाता है। अन्त में समाज की परम्परा या किसी

आश्रय की आवश्यकता से मजबूर होकर जब उन्हें विवाह करना ही पड़ता है, तो अपने हाथों कोई काम करना तो दूर रहा बेचारे पति से ही अपनी सारी निराशाओं का प्रतिशोध लेती हैं, क्योंकि उनकी बड़ी-बड़ी मांगों की पूर्ति करना उसके लिए सर्वथा असम्भव होता है। जब उनकी असली पसन्द का आदमी उनकी कल्पना में निवास करता है, जिसकी रचना उन्होंने संसार के कोने-कोने से विशेषताएं चुनकर अपने मन में कर रखी है, तो भला इस मर्त्यलोक के आदमी से वह कैसे संतुष्ट हो सकती हैं?

ये कल्पनात्मक आदर्शवादी वे लोग हैं जो जीवन भर प्रेम करते और तोड़ते रहते हैं। इनका जीवन एक ऐसा नाटक है जिसके पात्र की मनोवृत्ति एक नौसिखिए खिलाड़ी जैसी होती है, और ये एक गन्दे खेल की झूठी भावुकता से जीवन-नाटक खेला करते हैं। प्रेमासक्ति का मनोवैज्ञानिक अर्थ एक गम्भीर विवेचन का विषय है। यह शब्द जितना ही प्रचलित है, इसका अर्थ उतना ही गूढ़ है। अनेक लोग 'प्रथम दर्शन में ही प्रेमासक्ति' (लव ऐट फर्स्ट साइट) की बात करते हैं, परन्तु इसका जो अर्थ होता है उसके अनुसार यह संभव नहीं है कि उनका जीवन सुखी होगा। आजकल लोग वैवाहिक जीवन की सफलता के लिए प्रेमासक्ति की पूर्व-उपस्थिति आवश्यक समझने लगे हैं, परन्तु इसमें जरा भी तथ्य नहीं है। हो सकता है कि कभी किसी स्त्री-पुरुष ने प्रथम दर्शन में एक दूसरे के प्रति अनुभव किये हुए स्वाभाविक आकर्षण को 'प्रेमासक्ति' मा

र कि जब प्रेम मौजूद है तो अन्य बातें अपने-आप आ यंगी, शादी करली हो और परम्परागत अर्थ में सुखी वैवाहिक विन भी बिता लिया हो, परन्तु ऐसा बहुत कम होता है।

जैसा हमने पहले भी बताया है प्रेम वर्षों के अनवरत सह- ग तथा पारस्परिक सुख-दुःख के अनुभव का फल होता है। तएव एक आध असाधारण उदाहरणों को छोड़कर प्रेम को, जो त्व में सुखी जीवन का परिणाम है, उसका आधार नहीं माना सकता। दूसरे शब्दों में, 'प्रेमासक्ति' सामान्य स्थिति में ती प्रकार बिताए हुए जीवन का एक सुख-पूर्ण पारितोषक है कि वैवाहिक-जीवन की नींव। यदि लोग मनोविज्ञान के इस ल नियम को भलीभांति समझ लेते तो हमारे जीवन और हित्य की अधिकांश विकृति अपने-आप दूर हो जाती तथा आज के मानव-समाज में देखे जाने वाले अनेक दुःखान्त विग्रह सदा के लिए बन्द हो जाते।

रोमांचकारी इन्द्रजाल—प्रेमासक्ति

प्रेमासक्त होने की मनोवैज्ञानिक क्रिया की तुलना मनुष्य की आकृति के उन विद्युत् यंत्रों (रोबोट) की भाँति से की जा सकती है, जो एक ध्वनि-विशेष का संकेत पाते ही विशेष प्रकार के कार्य कर डालते हैं। ध्वनि का संकेत पाकर जब मशीन कोई काम करने के लिए चल पड़ती है तो फिर दूसरा निर्देश करके भी आप काम करने से रोक नहीं सकते। इन्द्रजाल

आदर्शवादी बिजली से चलने वाले इस यंत्र के ही समान है। हमारा मनोवैज्ञानिक ज्ञान-तंतु (कॉन्शेंस) एक ऐसी प्रेरक शक्ति से भरा हुआ होता है, जिसकी रूप-रेखा उनके बचपन के अनुभवों के अनुसार ही बन चुकी होती है।

उदाहरण के लिए एक ऐसी लड़की को ले लीजिए जिसे परिवार भर में अपने पिता से ही लाड़-प्यार मिला है। उसके चार भाई भी हैं परन्तु वे देखने में आकर्षक नहीं हैं और उसे प्यार करने की जगह बराबर तंग करते रहे हैं। इसके विपरीत उसके स्नेही पिता जिनकी देख-रेख में उसका सारा बचपन व्यतीत हुआ है, भूरे बालों और सुगठित शरीर वाले एक विनोद प्रिय और संभ्रान्त पुरुष हैं। लड़की के मस्तिष्क पर इस आकर्षक पिता के व्यक्तित्व का इतना गहरा प्रभाव पड़ा है कि अपने भावी जीवन की कल्पना में उसने ऐसे ही एक पुरुष को अपना आदर्श बना रखा है। स्वाभाविक है कि उसके बचपन का सारा आनन्द जिस एक प्रकार के सम्मोहक व्यक्तित्व पर केन्द्रित रहा है, वही उसके भावी स्वप्नों का आधार बने। लड़की के अबोध-मन में यह धारणा बैठ जाती है कि यदि अपने जीवन-नाटक में भी बचपन के-से ही मनोहर दृश्यों और पात्रों का आयोजन कर ले तो उसका वह आनन्द चिरस्थायी हो सकता है। नतीजा यह होता है कि इस काल्पनिक संसार की खोज में ही धीरे-धीरे वह २५ वर्ष की प्रौढ़ा नारी बन जाती है। अब तक वह हज़ारों व्यक्तियों से परिचित हो चुकी है, परन्तु एक भी उस

आदर्शों के निकट तक नहीं पहुँच सका है; कोई भी उसके बनाए नक्शे में ठीक नहीं बैठता। और चूँकि उसके ज्ञान तंतुओं को सही प्रेरणा पर सधने का अवसर कभी मिला ही नहीं, प्रत्येक मनुष्य में उसे कोई-न-कोई अभाव अवश्य खटकने लगता है।

इसके बाद ही अमरीका जाते हुए एक जहाज पर यह युवती महिला एक मिस्टर 'अ' से मिलती है और एकाएक इस पुरुष में उसे अपना चिर-वांछित उद्दीपन (स्टिमुलस) मिल जाता है। यह पुरुष जहाज पर ही काम करने वाला एक छोटा अफ़सर है, विवाहित है, दो बच्चों का पिता है तथा उसकी स्त्री, जिसे वह हृदय से प्यार करता है, बच्चों के साथ न्यूयार्क में रहती है। परन्तु हमारी युवती महिला तुरन्त अपनी सारी आलोचना-बुद्धिको ताक पर रखकर अपने जीवन-स्वप्न के काल्पनिक उपभोग में मग्न हो जाती है। वह इस बात को ध्यान में भी नहीं लाती कि मिस्टर 'अ' की शिक्षा बड़ी साधारण है, उसकी अपनी और 'अ' की परिस्थिति में रत्ती भर भी साम्य नहीं है, वह विवाहित है तथा उसकी तरफ 'अ' का आकर्षण बहुत मामूली है।

मिस्टर 'अ' के मुंह से एक भी सुहावना शब्द निकला कि महिला ने उसे प्रेम की स्वीकृति समझा, तथा आशा करने लगी कि वह जहाज छोड़कर यूरोप लौट चले और जल्द-से-जल्द उसके साथ शादी कर ले। महिला 'प्रेमासक्त' हो गई है। उसके भावों की हार्दिकता तथा 'अ' के प्रति उसकी सच्ची संवेदना में भी कोई सन्देह नहीं है। ऐसा प्रतीत होता है मानो 'अ' के

व्यक्तित्व ने उसे मंत्र-मुग्ध कर लिया है। वह समझती है कि वह व्यक्ति उसकी कल्पना के एकदम अनुरूप उतरता है तथा इसके साहचर्य में ही वह अपने जीवन के स्वर्गीय सपनों को प्राप्त कर सकती है। परन्तु एक बाहर से देखने वाले को जो इस सारी परिस्थिति की विषमता को भलिभाँति समझ रहा है, इस महिला का विचित्र दृष्टिकोण पागलपन का एक नमूना प्रतीत होता है।

'प्रेमासक्ति' को एक अस्थायी पागलपन कहा जा सकता है। जिस प्रकार मनुष्याकार विद्युत् यंत्र द्वार खोलने के किसी नियुक्त ध्वनि-संकेत को सुनते ही आगे बढ़कर दरवाजा खोल देता है, ठीक उसी प्रकार इस युवती महिला ने अपने भावात्मक जीवन-यंत्र को एक पुरुष के काल्पनिक आकर्षण-मात्र पर एक ऐसी दिशा में तथा एक ऐसे बीहड़ पथ पर डाल दिया है, जहाँ से लौटना असंभव है। महिला महसूस करती है कि वह एक ऐसे प्रबल और अवर्णनीय मनोविकार (पैशन) का शिकार बन रही है, जिसका रोकना उसके व्यक्तित्व की शक्ति के बाहर है। जब कोई तटस्थ निरीक्षक उस महिला को यह कहकर उस व्यक्ति का विचार करने से मना करता है कि उसकी कल्पना का आधार बाल-बच्चों वाला आदमी है, उसकी हैसियत ऐसी नहीं है कि वह उसे उस ढंग से रख सके जिसकी उसे (महिला को) आदत है, वह एक अच्छा साथी भी नहीं बन सकता क्योंकि उसको अपना अधिकांश समय जहाज पर बिताना पड़ता है, या उसका पति बनने के लिए उसकी अवस्

अधिक है, तो उसका उत्तर केवल इतना ही होता है, "परन्तु मैं
उसे प्यार करती हूं। उसे अपनी स्त्री को छोड़कर मेरे पास
आ जाना चाहिए। मैं आपको बताती हूं कि मैं उसे दिल से प्यार
करती हूं।"

प्रथम दर्शन में उत्पन्न प्रेमासक्ति का भविष्य

हजारों व्यक्ति, जो यों साधारण जीवन में सयाने कहे जायेंगे
गे प्रकार की ऊपर से उत्तेजक और रोमांचकारी प्रतीत होने
की, परन्तु वास्तव में वैवाहिक-जीवन के लिए सर्वथा घातक
संगिनियों में प्रेमासक्त हो जाते हैं। यदि वह युवती महिला
दास के उस अवसर को अपने निर्णय से सहमत कर लेती
या थोड़े दिनों के राग के बाद दोनों का विवाह हो जाता तो
धिक संभावना इस बात की ही होती कि शीघ्र ही युवती का
स्न भङ्ग हो जाता और एकाएक एक सुबह को इसे यह अनुभव
अनुभव होता कि जैसे उसके पलंग पर कोई अजनबी सोया हुआ है।
देखती कि उसके प्रिय पिता के आशीर्वाद [illegible] रहते हुए
। उसका पति 'क' एक साधारण, निर्दयी और कठोर पुरुष है
का और साहित्य पर, जो उसके जीवन का [illegible] है
[illegible] करने की [illegible] [illegible] है [illegible]
[illegible] की दृष्टि से उसमें [illegible] कोई [illegible] है [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible]

महिला के इस प्रेम-नाटक का दुखान्त आ जाता तथा अनन्तकाल अविवाहिता के नाते १. एक ओर टूटा हुआ दिल तथा दो बिखरे हुए जीवन जमा हो जाते।

दूसरी संभावना यह होती कि शायद नैराश्य के पहले झोंके से वह महिला हार न मानती और आदर्शवादियों के इस सिद्धान्त का प्रयोग आरम्भ करती कि "चूंकि मैं तुम्हें प्रेम करती हूँ, मैं जो कुछ कहूँ वह तुम्हें करना ही पड़ेगा।" अर्थात् बार-बार वह 'अ' को तम्बाकू पीने, शराब खोरी तथा इसी प्रकार की अन्य बुरी आदतें छोड़ने पर मजबूर करती। इन बातों को लेकर रोज ही घर में कलह मची रहती। यह नहीं कहा जा सकता कि यह आदतें अच्छी हैं, परन्तु जैसी भी हों 'अ' की आदतें वे जरूर ही बन गई हैं। यदि हमारी युवती ने प्रथम दृष्टि में ही प्रेमासक्त बनकर अपनी सारी अक़्ल बेच न दी होती तो आरम्भ में भी इन बुरी आदतों पर उसकी निगाह पड़ सकती थी। जो कुछ उसे मिला है, उसकी अपनी करनी का फल है। कोई भी व्यक्ति किसी एक चीज पर–चाहे वह भूरे बाल हों, मधुर हास्य हो सुन्दर वर्ण हो, छरहरा बदन हो, या सुडौल पैर हों—मुग्ध होकर शादी नहीं कर सकता; और यदि अभाग्यवश ऐसा कर बैठे तो फिर उसको यह आशा करना बेकार है कि चूंकि एक चीज पर वह मुग्ध है, तो और सब अपने-आप ठीक हो जायगा।

पूर्व में कई जातियों में माता-पिता द्वारा ठीक किये हुए विवाह ही प्रचलित हैं। इनमें युवक और युवती के प्रेम को इतना महत्व

नहीं किया जाता जिनका स्वभाव, सांस्कृतिक, धार्मिक, बौद्धिक, राजनीतिक या आर्थिक परिस्थितियाँ से अलग हो। पश्चिम में लोग ऐसे विवाहों को भय और विस्मय की दृष्टि से देखते हैं। हालांकि हम भी ऐसे विवाहों के पक्ष में नहीं हैं, जिनको माता-पिता केवल अपने स्वार्थ-साधन के लिए ठीक कर देते हैं, परन्तु हमारा यह अटल विश्वास है कि विवाह के पहले से ही प्रेमासक्त होना कोई ऐसा आवश्यक तत्व नहीं है जिसके बिना सुखी वैवाहिक जीवन की कल्पना ही नहीं की जा सकती।

वैवाहिक सम्बंधों में सुख की मात्रा बहुत बढ़ जाती यदि विवाह करने वाले प्रेम की बात कम सोचते तथा अपनी आर्थिक परिस्थिति, सन्तान-पालन के सिद्धान्त, खाली समय का पारस्परिक सदुपयोग, सामाजिक सहयोग के क्षेत्र में दोनों की सफलता का पिछला इतिहास तथा भविष्य में मिलकर जिम्मेदारी उठाने की योग्यता आदि आवश्यक विषयों पर गंभीरतापूर्वक विचार कर लेते। कितनी विचित्र बात है कि यदि कोई आदमी किसी व्यापार या साझेदारी में महज इसलिए शामिल होने को लालायित हो उठता है कि उस व्यवसाय विशेष के दफ्तर की कुर्सी और मेज उसे बहुत पसन्द आए तो लोग उसे बेवकूफ बनाते हैं, परन्तु यदि वही आदमी एक लड़की से केवल इसलिए शादी कर ले कि वह देखने में सुन्दर है, नाच अच्छा करती है तथा पार्टियों में जाने की शौकीन है, तो उसके मित्र उसे बधाई देते नहीं थकते।

दस वर्ष के बाद इस तरह शादी करने वाला आदमी दूसरी स्त्रियों के साथ मनोरंजन ढूंढता हुआ देखा जाता है। उसकी पत्नी प्रायः शराब पीने लगती है। दोनों ही बुरी तरह दुखी हैं। महज बच्चा एक ऐसा संयुक्त आकर्षण है जिसके कारण दोनों साथ रहने पर मजबूर हैं। बेचारे बच्चे की भी हालत बुरी है। मां और बाप में से किसी को भी उसमें सच्ची दिलचस्पी नहीं है। वैवाहिक सुख के लिए आवश्यक सांसारिक सहयोग की इन अनेक बातों का खयाल किये बगैर, महज प्रेमासक्त बन कर विवाह कर लेने के दुष्परिणाम ऐसे ही हुआ करते हैं। वैवाहिक जीवन के जिस आनन्द का निर्देश "और उसके बाद दोनों आनन्द पूर्वक रहने लगे" वाले प्रचलित वाक्य में किया गया है, वह तो शायद ही कभी इस बदनसीब को मिल सकता है, जो आरम्भ के चुनाव में ही ऐसी मूर्खतापूर्ण भूल कर बैठता है।

परिपक्व प्रेम बनाम भावुकता

लोगों का वैवाहिक जीवन बहुत अधिक सुखी होता यदि स्त्री-पुरुष के सम्बंधों की योजना उनकी सामाजिक, बौद्धिक और व्यावसायिक समताओं, सन्तान और राष्ट्र के प्रति उनके उत्तरदायित्व तथा पारस्परिक सहयोग के आधार पर की जाती, तथा वे अपने जीवन का आरम्भ कल्पित प्रेम की नींव पर न करके इस विश्वास के साथ करते कि [illegible] उचित वैवा-

चरण का पालन किया तो दस-पांच वर्षों के निरन्तर
का पारितोषक उन्हें 'प्रेम' के रूप में ही मिलेगा। भाव,
और मस्तिष्क की दृष्टि से अपरिपक्व लोगों ने 'प्रेम' शब्द
दुरुपयोग किया है कि उसका सारा अर्थ ही बदल
आवश्यकता है। अक्सर लोग सोचते हैं कि 'प्रेम' मान-
ों में एक विशेष श्रेणी की वस्तु है, परन्तु तथ्य यह है
कि विशिष्ट सामाजिक भावना के अतिरिक्त और कुछ
। प्रेम केवल वह सामूहिक चेतना है जिस पर सारे
सम्बंध आधारित हैं।

'मित्रता' में दो भिन्न-जातीय (हेटरोसैक्सुअल) व्य-
बीच सहज रूप में पाई जाने वाली सहयोग-भावना
जोड़ दिया जाय तो दोनों के संयोग को 'प्रेम' कहेंगे।
ब्दों में मित्रता और कामवृत्ति का योग ही 'प्रेम' है।
है अपरिपक्व भावना वाला व्यक्ति शरीर से पूर्ण विक-
तथा संभोग करने की योग्यता भी रखता हो, परन्तु मनो-
दृष्टि से ऐसे व्यक्ति के लिए सच्चे प्रेम का अनुभव
उसी प्रकार असम्भव है जैसे सड़क पर भाड़ू लगाने
लिए महाकवि बाणभट्ट की कविता का आनन्द ले पाना।
के कारण भावुक आदर्शवादी को जितना कष्ट भोगना
, उतना अन्य किसी को नहीं। हालांकि यह सही है कि
दर्शवादियों में से कइयों ने समाज को सुन्दरतम काव्य,
टि के नाटक, दिल दहला देने वाले उपन्यास तथा

मनोहारी सङ्गीत प्रदान किये हैं, फिर भी यह मानना ही पड़ेगा कि यदि इन लोगों ने प्रयत्न किया होता तो इनका प्रेम-जीवन अधूरा न रहकर सब प्रकार से पूर्ण हुआ होता तथा उस अवस्था में भी उनकी रचनाओं की श्रेष्ठता उसी कोटि की हुई होती। किसी भी पाठक को यह न समझना चाहिए कि सुन्दर काव्य और संगीत की सृष्टि के लिए भावुक आदर्शवादी होना आवश्यक है। हां, जहां तक साधारण कलात्मकता का प्रश्न है, उसे कल्पनात्मक आदर्शवाद का ही एक प्रकार कहना चाहिए। और तुकबन्दी लिखने के लिए उच्च कोटि की कामना और आदर्शवाद की जरूरत नहीं पड़ती।

संसार के साहित्य में इन अपरिपक्व भावना वाले प्रेमियों की विलक्षणता पर जितना अधिक लिखा गया है उतना शायद ही अन्य किसी एक विषय पर लिखा गया हो। हर भावुक आदर्शवादी को पक्का विश्वास होता है कि उसने जो कुछ किया एकदम ठीक किया। और चूंकि उसकी निगाहों में उसकी अपनी वेदनाएं और गुत्थियां अपने ढंग की निराली होती हैं, शिष्टाचार और विनय का संकोच किसी-न-किसी काव्यात्मक रूप में अपने टूटे हुए प्रेम की कहानी कह डालने से उसे नहीं रोक सकता। उसे प्रबल आकांक्षा होती है कि दुनिया भी उसकी वेदनाओं को देखे और समझे; कोई-न-कोई समवेदना प्रकट करने वाला मिल ही जायगा।

इसमें कोई आश्चर्य नहीं [illegible] परम्पराओं ने

सर्वसाधारण के मस्तिष्क पर इतना गहरा प्रभाव जमा रखा है। रोज ही कोई-न-कोई भावुक मन किसी-न-किसी कल्पनात्मक प्रेम-काव्य की रचना करता रहता है। दुनिया उसके लिए इतनी भूखी जो है? स्कूलों के लड़के-लड़कियां बिना किसी प्रकार की आलोचना किये या परिणाम का खयाल किये हुए इन काव्यों में मग्न देखे जाते हैं तथा यदि किसी सयाने व्यक्ति ने समझा कर या उदाहरण देकर उन्हें जीवन की सच्ची राह पर न मोड़ा तो वे उन्हीं काल्पनिक काव्यों के अनुसार अपने जीवन का नक्शा भी बनाने लगते हैं। कितने तो ऐसे होते हैं जो सारा जीवन ही इसी कल्पना के पीछे गवा देते हैं।

अब हमें सोचना चाहिए कि सुखी प्रेम-जीवन की—चाहे वह विवाह के पहले हो या बाद में—आवश्यकताएं क्या हैं। जिस पाठक ने प्रेम के विरुद्ध किये जाने वाले तीन वारों—अज्ञान, प्रतिद्वन्द्विता और भावुक आदर्शवाद को भलीभांति समझ लिया है, उसके लिए इतना ही कह देना काफी है कि यदि कोई व्यक्ति इन गलतियों से बच जाय तथा थोड़े सन्तोष और विनोद-वृत्ति से काम लेकर जीवन निर्वाह कर सके, तो वह किसी भी प्रेम या विवाह-सम्बंध को सुखी और सफल बना सकता है। मिथ्याभिमान, झूठी शान के लिए प्रतिद्वन्द्विता, अपने साथी को नीचा दिखाकर श्रेष्ठत्व स्थापित करने की प्रवृत्ति, उसकी परिस्थितियों और समस्याओं को अपनी समझ सकने की अयोग्यता, तथा हर बात में अपने ही को पूर्ण, सही और श्रेष्ठ

समझने की कोशिश आदि ऐसे दुर्गुण हैं, जो किसी भी सम्बन्ध को विषाक्त बना देने के लिए काफी हैं। प्रेम-सम्बंध में तो इनके दुष्परिणाम बहुत ही घातक होते हैं। 'प्रेम-सम्बंध' का निर्वाह उतना ही कलापूर्ण और रचनात्मक कार्य है जितना स्वयं जीवन-निर्वाह। अभिप्राय यह है कि जिन लोगों ने आत्म-निर्माण की कला में पूरी सफलता प्राप्त कर ली है, उन्हीं को वैवाहिक सम्बंध में बंधकर इस नये आनन्द और संसार की सृष्टि करनी चाहिए।

कुछ उपयोगी सुझाव

आज जब परिवार की पैतृक संस्था का जोरों से विघटन (डिस-इण्टैग्रेशन) हो रहा है तथा हमारी प्रेम-समस्याओं को सुलझाने में आर्थिक परिस्थितियों का महत्व इतना अधिक बढ़ गया है, हमें मानना पड़ेगा कि प्रेम और विवाह की समस्या का कोई एक आदर्श हल नहीं बताया जा सकता। चूंकि प्रत्येक व्यक्ति के लिए अपनी उस समस्या का हल अपने दृष्टिकोण तथा अपने ढंग से निकालना आवश्यक है, हम केवल इतनी ही राय दे सकते हैं कि 'सारी बातों को पहले अच्छी तरह समझ लीजिए तथा जिस समाज में आप रहते हैं उसकी सर्वश्रेष्ठ मान्यताओं के अनुसार जितना सहयोग आप कर सकते हैं, उसमें कुछ भी उठा न रखें।' यदि आप महसूस करते हैं कि जानने योग्य कुछ आवश्यक बातें आपके सामने नहीं हैं तो आप किसी कुशल मानस-

शास्त्री से, या विशेषज्ञ के अभाव में किसी सुखी और सफल दम्पति से, परामर्श कर लें। अनेक ऐसी बातें जो प्रथम दृष्टि में आपको बड़ी गूढ़-सी प्रतीत होती हैं, ऐसा करने से पूरे प्रकाश में आ जायंगी।

व्यक्तिगत लैंगिक समस्याओं के सही हल प्राय: दैनिक जीवन के छोटे-छोटे झंझटों तथा परेशानियों से और कठिन हो जाते हैं। कई प्रेम-सम्बंध इसलिए टूट गए हैं कि दोनों प्रेमियों को बहुत दिन तक एक दूसरे के अत्यन्त निकट और साथ रहना पड़ा है। हमारे विचार से विवाहित जीवन के आनन्द को स्थायी बनाए रखने के लिए कभी-कभी पति-पत्नी का अलग रहना भी आवश्यक है। इससे उनमें से प्रत्येक को ऐसा अवसर मिल जाता है जब वे अपना समय बिना एक-दूसरे के दखल के अपनी इच्छा के अनुसार बिता सकते हैं। सामान्य व्यक्तियों में कुछ दिनों का यह वियोग उनके अन्दर एक दूसरे के प्रति नई दिलचस्पी और आकर्षण पैदा करते देखा गया है। परन्तु जहां इसका परिणाम ईर्ष्या, बेचैनी अथवा सन्देह आदि के रूप में दिखाई दे, वहां इसे दोनों में से एक साथी के अन्दर दूषित परिग्रह-वृत्ति (पोज़ैसिवनैस) का लक्षण समझना चाहिए। परिग्रह-वृत्ति, ईर्ष्या, प्रतिद्वन्द्विता, या आवश्यकता से अधिक प्रेम प्रदर्शन, ये सभी भावात्मक अपरिपक्वता के द्योतक हैं। पुरुष का द्वेष उसकी हीन-भावना (इन्फीरियारिटी काम्प्लैक्स) का परिचायक है तथा अपने साथी को हमेशा बांध रखने की परिग्रह-

वृत्ति अरक्षितता (इन्सिक्योरिटी) की भावना प्रकट करती है।

प्रेम को बांटा जा सकता है, किसी को दिया जा सकता है, परन्तु मांगा नहीं जा सकता। हमने पत्नियों को शिकायत करते सुना है कि उनके पति अब उनसे प्रेम नहीं करते; मानो यह उनके पतियों में ही किसी दोष का लक्षण है, जबकि असली कारण यह है कि पत्नियों ने विवाह के बाद अपना जीवन ऐसा रखा ही नहीं कि पतियों का प्रेम सुहाग के ही दिनों जैसा बना रहता। हमने अनेक माता-पिताओं को भी रोना रोते सुना है कि उनके बच्चे उनसे स्नेह नहीं करते या उनका आदर नहीं करते। वे ऐसा समझते हैं मानो स्त्री-पुरुष का संभोग—जो बच्चों की पैदाइश का एकमात्र कारण है—कोई ऐसी गारण्टी है कि उस संभोग से पैदा हुए बच्चे जीवन भर अपने पैदा करने वालों से प्रेम करते रहें। इसी प्रकार हमने अनेक भावुक पतियों को यह कह कर रोते और आहें भरते देखा है कि उनकी पत्नियां अब उनमें पहले जैसी दिलचस्पी नहीं लेतीं, जैसे कि कृत्रिम विनोदों छोटी-छोटी कृपाओं तथा आदर और शिष्टाचार के उन मिथ्या प्रदर्शनों का बन्द हो जाना ही—जिनकी प्रथम मिलन के दिनों में भरमार हुआ करती थी—दो व्यक्तियों में सच्ची मानवीय संवेदना तथा सहज वैवाहिक आकर्षण के अभाव का स्पष्ट प्रमाण है।

स्वतंत्रता की भांति प्रेम में आनन्द भी निरन्तर सतर्कता और पारस्परिक अभियोजन (म्यूचुअल एड्जस्टमेण्ट) के ही मूल्य

खरीदा जा सकता है। उस प्रेम में कभी सुख नहीं मिल सकता जिसमें सारा अभियोजन (एड्जस्टमेण्ट) केवल एक साथी को करना पड़े तथा दूसरा अपनी पूर्णता के मिथ्या घमण्ड में चट्टान की तरह अपनी जगह पर अड़ा रहे। इसके अतिरिक्त सस्ती भावुकता और लोगों के सामने आवश्यकता से अधिक प्रेम प्रदर्शन ठीक उसी प्रकार प्रेम का क्रम भङ्ग कर देते हैं जैसे इसका विपरीत विश्वास, अर्थात् किसी भी प्रकार की प्रेमाभिव्यक्ति को लड़कपन और मूर्खता की निशानी ही समझना, प्रेम की सहज सुन्दरता और आनन्द को नष्ट कर देता है। ऊपर हमने दो सिरों (ऐक्स्ट्रीम्स) का वर्णन किया है। एक तरफ़ विवाह जैसे कोमल सम्बंध से भी निरुत्साह और व्यापारिक दृष्टिकोण से काम लेना तथा दूसरी तरफ़ कल्पना से भरे हुए रोमांचकारी तूफ़ान में बह जाना। परन्तु जहां तक आदर्श मानवीय प्रेम का सम्बंध है वह इन दोनों सिरों के बीच की वस्तु है। आनन्द की ही भांति प्रेम की प्राप्ति भी वहीं होती है जहां दोनों साथी एक दूसरे को केवल अपने ही लिए नहीं वरन् सारी मानवता के लिए उपयोगी समझते हैं।

कोई भी दो मनुष्य पूर्ण नहीं होते। बहुत सम्भव है कि अच्छे-से-अच्छे विवाह-सम्बंध में बंधे हुए स्त्री-पुरुषों में से भी एक या दोनों में कुछ लड़कपन या अपरिपक्वता बाकी हो। शायद ही कोई ऐसा पुरुष हो जो किसी-न-किसी क्षेत्र-विशेष में अपने को संपूर्ण समझने की स्पृहा न रखता हो, हालांकि

वैसे जीवन के प्रति उसका सामान्य दृष्टिकोण एकदम ठीक भी हो। इसी प्रकार शायद ही कोई स्त्री हो जो किसी-न-किसी क्षण एक क्षेत्र-विशेष में अपने को अद्वितीय समझने की कल्पना न कर लेती हो। चतुर व्यक्ति अपने साथीकी इस छोटी-सी आदत पर ध्यान नहीं देते, विशेषकर जब यह जीवन के एक अति गौण क्षेत्र तक ही सीमित रह जाती है।

मैं कई ऐसे विवाहोंको जानता हूं जिनमें पत्नी को यह खब्त था कि वह भोजन बनाने की कलामें बड़ी प्रवीण है,जबकि असलियत बिलकुल इसके विपरीत थी। फिर भी यह विवाह-सम्बंध पूर्ण सुखी था, क्योंकि पति इस बात पर कभी ध्यान न देता था। मैं एक और विवाह जानता हूं जिसमें एक चतुर पत्नी ने अपने पति के इस विश्वास का कभी खंडन न किया कि सारे महत्त्व-पूर्ण निर्णय वह अकेले ही करता है,हालांकि वह जानती थी कि हफ्तों पहले स्वयं उसीने वह निर्णय अपने पति को सुझाया था। उल्टे वह चुपचाप उस समय की प्रतीक्षा करती थी जब उसका पति अपने विचारों को इस स्वाभिमान के साथ घोषित करता था मानो उसने कोई नया आविष्कार किया है। दूसरी तरफ मैंने अनेक विवाहों को केवल इसलिए विच्छेद होते देखा है कि पत्नी ने ताश खेलते समय पति की चालों पर एतराज़ किया अथवा तसवीरें टांगने या कमीज़ के अनुकूल टाई चुनने के उसके तरीकों को नापसन्द किया।

इस प्रकार के मानसिक नैराश्य के अनेक उदाहरण दिये

जा सकते हैं, परन्तु इनसे मानवीय आचरण के किसी सामान्य नियम का प्रतिपादन नहीं होता। सबसे सुन्दर नियम यह है कि विवाह करने के पहले अपने साथीको भलीभांति समझ लीजिए तथा विवाह के बाद उसे वही समझिए जो वह वास्तव में है और उसीका उत्तम-से-उत्तम उपयोग कीजिए। जो पुरुष वेश्याओं से विवाह करते हैं यह सोचकर कि उन्हें साध्वी बना लेंगे, तथा जो स्त्रियां शराबियों, अफीमचियों और जुआ-रियों से इस आशा में विवाह कर लेती हैं कि वे उन्हें सुधार लेंगी, ठीक वही पाती हैं जिसकी वे पात्र हैं—अर्थात जीवन भर के लिए उनके घमण्ड का अपमान। ऐसे व्यक्तियों के लिए विवाह नाना प्रकार के मानसिक विकारों का कारण बन जाता है।

विवाह और प्रेम के सम्बंध तब तक सुखी नहीं हो सकते जब तक हम अपने बच्चों के दिमाग से कल्पनात्मक उद्दीपन (पैशन्स) के प्रबल वेग से उत्पन्न भ्रान्ति (फ़ैलेसीज) को निकाल कर प्रेम-कला की क्रियात्मक शिक्षा नहीं देते तथा प्रत्येक स्त्री और पुरुष को यह सिखा नहीं देते कि उन्हें अपने भावों और काम-वृत्तियों को ठीक उसी प्रकार जिम्मेदारी के साथ काबू में रखना चाहिए, जिस प्रकार वे दूसरी असामाजिक भावनाओं को दबाते हैं।

हमारे प्रेम-जीवन की अनेक कठिनाइयों का एक सीधा ... है कि अधिकांश युवक और युवतियों को प्रेम करने

के लिए सुन्दर वातावरण ही नहीं मिल पाता। आज की
प्रेम की सामाजिक उपयोगिता की तरफ से आंखें मूंदे हुए
तथा प्रेम को सर्वोत्कृष्ट मानवीय सहयोग का एक सुन्दर
समझने की बजाय उसके प्रति ऐसा भाव बनाए हुए हैं मानो
यह कोई घोर पाप हो। सच्चे प्रेम का अभाव ही संसार के
दुःखों का कारण है; प्रेम की अधिकता से बुराइयाँ हो जाएं,
ऐसा सोचने की आवश्यकता नहीं है।